16

सुविख्यात सांसद
मोनोग्राफ सीरीज

पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव

लोक सभा सचिवालय
नई दिल्ली
1997

सुविख्यात सांसद
मोनोग्राफ सीरीज

पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव

लोक सभा सचिवालय
नई दिल्ली
1997

2416/LS F—1-A

एल०एस०एस० (पी०आर०आई०एस०—ई०एस०एस०) / ई०पी०एम० / 16

अगस्त, 1997

मूल्य : 60.00 रुपये

© लोक सभा सचिवालय, 1997

लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम (आठवां संस्करण) के नियम 382 के अन्तर्गत प्रकाशित और प्रबन्धक, फोटो लिथो एकक, भारत सरकार मुद्रणालय, मिन्टो रोड, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

2416/LS F—1-B

प्राक्कथन

भारतीय संसदीय ग्रुप, अपने कार्यकलापों के अन्तर्गत ऐसे सुविख्यात नेताओं को स्मरण करने हेतु उनकी जन्म शताब्दियों और जयन्तियों सम्बन्धी समारोहों का आयोजन करता रहता है, जिन्होंने सांसद के रूप में अपना नाम कमाया है और भारत की संसदीय प्रणाली तथा नीति के विषय में अपनी गहरी छाप छोड़ी है। भारतीय संसदीय ग्रुप, राष्ट्रीय हित में, इन नेताओं के योगदान को मुख्य रूप से दर्शाने का प्रयास करता है। इस संदर्भ में, वर्ष 1990 में, हमारी संसदीय प्रणाली को सुदृढ़ बनाने की दिशा में सुप्रसिद्ध सांसदों द्वारा की गयी असाधारण सेवा अभिलिखित करने हेतु एक नयी मोनोग्राफ सीरीज का शुभारम्भ किया गया। सुविख्यात सांसद मोनोग्राफ सीरीज के अन्तर्गत ऐसे 15 मोनोग्राफ अब तक प्रकाशित किये जा चुके हैं।

प्रस्तुत मोनोग्राफ में प्रमुख स्वतंत्रता सेनानी, सुविख्यात सांसद और सुपरसिद्ध विधिवेता पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव द्वारा दिये उत्कृष्ट योगदान को स्मरण किया गया है। इस पुस्तक के भाग-एक में भारत के इस महान सपूत का संक्षिप्त जीवन वृत्त दिया गया है। भाग-दो में उनके कुछ समकालीन, निकट सहयोगियों और संसद सदस्यों के लेख सम्मिलित किये गये हैं। भाग-तीन में पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव द्वारा संविधान सभा, तथा लोक सभा में दिये गये कुछ चुनिन्दा भाषण शामिल किये गये हैं। भाग-चार में वकील समुदाय और सार्वजनिक जीवन में उनके कुछ प्रशंसकों और सहयोगियों द्वारा दी गयी भावपूर्ण श्रद्धांजलियों का उल्लेख है।

हमें आशा है कि हमारे देश के समकालीन इतिहास में रुचि रखने वालों के लिये यह मोनोग्राफ उपयोगी सिद्ध होगा।

नई दिल्ली;
अगस्त, 1997

पी०ए० संगमा,
अध्यक्ष, लोक सभा
और
प्रेसीडेंट, भारतीय संसदीय ग्रुप।

विषय सूची

भाग एक

पृष्ठ

पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव—संक्षिप्त जीवन-वृत्त 1

भाग दो
लेख

मुकुट बिहारी लाल भार्गव—एक समर्पित व्यक्तित्व
डा० शंकर दयाल शर्मा 9

एक सर्वतोमुखी व्यक्तित्व
बलि राम भगत 11

तेजस्वी देशभक्तः पंडित भार्गव
नाथूराम मिर्धा 16

पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गवः भारत का एक महान सपूत
विद्या चरण शुक्ल 19

श्री मुकुट बिहारी लाल भार्गव — गरीबों का मसीहा
मोहन लाल श्रीमल 21

पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव — विधि जगत का एक सितारा
बी०पी० बेरी 25

स्वर्गीय पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव — एक प्रबुद्ध व्यक्ति और वकील समुदाय के निर्विवाद नेता
सी०एन० शर्मा 27

भाग तीन
संसद में दिये गये चुनिन्दा भाषण

पृष्ठ

- हिन्दू कोड बिल के संबंध में 33
- राज्यों के पुनर्गठन के संबंध में 69
- उपयोगी पशु परिरक्षण / गोसंवर्धन विधेयक के संबंध में 87
- कर अपवंचकों और काला बाजारियों को दंड देने सम्बन्धी विधेयक के संबंध में 95

भाग चार
श्रद्धांजलियां

- नवल किशोर शर्मा 101
- जस्टिस वाई० वी० चन्द्रचूड़ 101
- एस० निजलिंगप्पा 102
- बेगम एजाज रसूल 103
- चौधरी रणबीर सिंह 103

भाग एक

पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव

संक्षिप्त जीवन-वृत्त

1

पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव—संक्षिप्त जीवन-वृत

पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव हमारे देश के उन प्रमुख नेताओं में से एक थे जो राष्ट्र-हित के प्रति समर्पित थे और जिन्होंने इसी उद्देश्य के लिए असाधारण ईमानदारी से काम कर के लोगों के मन को जीत लिया था। उनके मन में जनता की सेवा करने का भरपूर उत्साह था। वह किसानों और गरीब लोगों के उत्थान के लिये पूर्ण रूप से समर्पित थे। उन्होंने दलित वर्ग और पीड़ित जनसमूह को युगों से चले आ रहे शोषण से मुक्त कराने के लिये समाज सेवा करने हेतु राजनीति और वकालत के पेशे का साधन के रूप में इस्तेमाल किया। उपनिवेशिक पराधीनता की अवधि में अजमेर को छोड़ कर समूचा राजस्थान अनेक छोटे-बड़े रजवाड़ों में विभक्त था। उन दिनों प्रेस की आजादी मात्र एक कल्पना की बात थी। समाचार-पत्र, प्रचार-सामग्री, शिक्षण संस्थाओं आदि तक पहुंच दुर्लभ थी। ऐसी स्थिति में, राजस्थान की जनता में जागृति लाना और उनको दासता के अनेक रूपों के प्रति सजग करना एक ऐसा महत्वपूर्ण काम था, जिसको भुलाया नहीं जा सकता।

प्रारम्भिक जीवन एवं शिक्षा

पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव का जन्म 30 जनवरी, 1903 को शाहपुरा (भीलवाड़ा) नामक एक छोटे से रजवाड़े में हुआ था। बाद में वह बचपन में ही श्री विनोदी लालजी भार्गव के दत्तक पुत्र के रूप में अजमेर जिले के एक प्रमुख व्यावसायिक केन्द्र ब्यावर आये। उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा शाहपुरा में पूरी की और ब्यावर स्थित मिशन स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा पास की तथा म्योर सेंट्रल कालेज, इलाहाबाद से स्नातक और इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम०ए० और एलएल०बी० की परीक्षाएं पास कीं।

पंडित भार्गवजी ने ब्यावर में वकालत की अपनी प्रैक्टिस आरम्भ की। महात्मा गांधी, देशबन्धु चित्तरंजन दास और पंडित मोतीलाल नेहरू युवा मुकुट बिहारी लाल के प्रेरणा स्रोत और मार्गदर्शक थे। इसलिये उनका 20 वर्ष की जोशीली युवावस्था में

स्वाधीनता आन्दोलन तथा राष्ट्रवादी राजनीति की ओर आकृष्ट होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वह शीघ्र ही अजमेर-ब्यावर क्षेत्र में स्वाधीनता आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने लगे। चूंकि अजमेर पर ब्रिटेन का शासन था, इसलिये रजवाड़ों में चल रहे स्वतंत्रता संग्राम के लिए वह महत्वपूर्ण केन्द्रीय स्थल सिद्ध हुआ। इस प्रकार पंडित भार्गव समूचे राजस्थान क्षेत्र के स्वतंत्रता संग्राम के साथ जुड़े रहे। वह व्यक्तिगत "सत्याग्रह" और "भारत छोड़ो आन्दोलन" में भाग लेते हुए गिरफ्तार हुए तथा जेल गये। राजनीतिक दृष्टि से भिन्न मत रखने वालों और नजरबन्द व्यक्तियों के बचाव के लिये उन्होंने वकालत संबंधी अपनी प्रतिभा का उपयोग किया और वह राजनीतिक ग्रुपों और भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिये एक या दूसरे न्यायालयों में पेश होने और मुकदमा लड़ने के लिये सदैव तत्पर रहते थे।

सांसद के रूप में

पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव के कार्यकलाप वकालत के पेशे तक ही सीमित नहीं थे। जब वह जेल में थे, तब उनको अनेक यातनाएं सहनी पड़ीं, जिनके परिणामस्वरूप उनकी नज़र बहुत कमजोर हो गयी। श्री भार्गव को वर्ष 1950 तक पूरी तरह दिखाई देना बंद हो गया था लेकिन वह एक पक्के इरादे वाले व्यक्ति थे, नजर के न रहने पर भी उन्होंने राष्ट्र की सेवा के अपने मार्ग को नहीं छोड़ा। श्री भार्गव वर्ष 1945 में सेंट्रल लेजिस्लेटिव असेम्बली के सदस्य बने। वे वर्ष 1946 में संविधान सभा के सदस्य और वर्ष 1947 से 1950 तक अजमेर स्थित मुख्य आयुक्त की परामर्शदात्री परिषद के वाइस-चेयरमैन रहे। वह पहली, दूसरी और तीसरी लोक सभा के भी सदस्य रहे। उन्होंने वर्ष 1952 में बर्न में हुई 41वीं इंटर-पार्लियामेंटरी कांफ्रेंस में भारत की संसद का प्रतिनिधित्व किया। उन्होंने स्विटजरलैंड में "वर्ल्ड मॉरल रि-आर्ममेंट असेम्बली" और लंदन में "वन वर्ल्ड गवर्नमेंट कांफ्रेंस" में भी भाग लिया था।

हमारे देश में सेंट्रल लेजिस्लेटिव असेम्बली, संविधान सभा, प्रोविजनल पार्लियामेंट और फिर अन्त में लोक सभा का भी सदस्य बनने का विरला सौभाग्य बहुत ही कम नेताओं को प्राप्त हुआ है। रिकार्ड से पता चलता है कि पंडित भार्गव अपने विचारों को स्पष्ट और जोरदार ढंग से तथा युक्तियुक्त और तर्कसंगत तरीके से रखते थे, जिससे उन से भिन्न मत रखने वाले भी उनके विचार से सहमत हो जाते थे। जब भी वह राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर सभा में बोले, उनके सांसद साथियों ने उनके तर्क, संवेदनशीलता और जानकारी का लोहा माना। लोक सभा में अपने प्रथम भाषण में उन्होंने अंग्रेजी भाषा को अनावश्यक महत्व दिये जाने का विरोध किया और कहा कि राष्ट्रवाद का बंधन मजबूत करने के लिये हिन्दी का राष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रयोग किया जाना अत्यंत

आवश्यक है। उनका कहना था कि कोई विदेशी भाषा आम जनता को भावनात्मक और सांस्कृतिक दृष्टि से एक सूत्र में नहीं बांध सकती और इसीलिये, वह राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा नहीं दे सकती।

पंडित भार्गव ने पंडित जवाहर लाल नेहरू की नाराजगी की परवाह न करते हुए भी हिन्दू कोड बिल का विरोध किया। उन्होंने वित्तीय संस्थाओं और प्रमुख उद्योगों पर सामाजिक नियंत्रण रखने की पुरजोर वकालत की। भाग "ग" राज्यों के हितों का ध्यान रखते हुए उन्होंने अपने युक्तियुक्त विचार रखे, जिनकी बहुत सराहना की गयी। उन्होंने भाग "ग" राज्यों के राजनीतिक और आर्थिक विकास की दृढ़ता से मांग की तथा अजमेर, भोपाल, कुर्ग और त्रिपुरा जैसे भाग "ग" राज्यों के निकटवर्ती राज्यों में विलय की आवश्यकता पर जोर दिया। संक्षेप में, वह एक प्रमुख सांसद थे जो हमेशा अपने विचार युक्तियुक्त ढंग से प्रस्तुत करते थे।

अजमेर के सच्चे प्रवक्ता

जब तक अजमेर केन्द्र-शासित क्षेत्र रहा, पंडित भार्गव संसद में प्रायः अजमेर की समस्याओं को उजागर करते रहे। प्रोविजनल पार्लियामेंट (अस्थायी संसद) में श्री आर०के० सिधवा के बाद उन्होंने ही अधिकतम प्रश्न पूछे और केन्द्र-शासित क्षेत्रों के मुख्य आयुक्तों की निरंकुशता के विरुद्ध आवाज उठाई और इन क्षेत्रों के लिये सलाहकार परिषदों के गठन का प्रस्ताव रखा। जब नौकरशाही प्रवृत्ति के विरुद्ध रोष प्रकट करते हुए इन परिषदों से गैर-सरकारी सदस्यों ने त्याग-पत्र दे दिये, तब उन्होंने वर्ष 1950 में एक प्रस्ताव रखा कि अजमेर तथा ऐसे अन्य क्षेत्रों के लिये लोकतंत्रीय ढंग से निर्वाचित निकाय बनाये जायें।

श्री भार्गव की स्थानीय स्वायत्त शासन में गहरी रुचि थी और वह ब्यावर में स्थानीय शासन के कार्यकलापों में बहुत सक्रिय रहे। वह अनेक वर्षों तक नगर पालिका के वाइस-चेयरमैन रहे। मुकुट बिहारी लालजी विकेन्द्रीकरण और स्थानीय स्तर पर लोकतंत्रीकरण के पक्के समर्थक थे। वह एक ऐसा प्रशासन चाहते थे, जिसमें सही अर्थों में जनता और निम्न वर्ग के लोगों की भागीदारी हो। वह ऐसा प्रशासन नहीं चाहते थे, जिसमें उच्चाधिकारियों की भरमार हो। वह निचले स्तरों पर आम जनता का योगदान लेने की तकनीक और कला को भली-भांति जानते थे, समझते थे और इन्हें अमल में लाया करते थे। उनके विचार में किसी योजना को ऊपर से थोपने से कोई प्रगति नहीं हो सकती। इस विचार को मन में रखकर वह अपने क्षेत्र की समस्याओं पर पूरा ध्यान देते थे और उनसे उत्साहपूर्वक निपटते थे।

वकील के रूप में

पंडित भार्गव ने जुलाई, 1926 में ब्यावर में अपनी वकालत आरंभ की और पांच दशक से अधिक समय तक वह एक वकील के रूप में प्रेक्टिस करते रहे। उनमें वे सभी गुण समाये हुए थे जिनके किसी विधिवेत्ता, सुवक्ता और दार्शनिक में होने की अपेक्षा की जा सकती है। उनकी स्मरण शक्ति और कल्पना शक्ति कमाल की थी और इसके अतिरिक्त इनमें सृजनात्मक गुण भी विद्यमान थे। यद्यपि दृष्टिहीनता की कठिनाई उनको थी, तथापि तथ्यों की और विभिन्न कानूनों के उपबंधों की उनकी जानकारी इतनी पूर्ण थी कि उनमें कभी कोई त्रुटि नहीं मिलती थी और इस बात को स्वीकार करना असम्भव सा लगता था कि वह शारीरिक रूप से इतने लाचार हैं। श्री भार्गव ने यह अद्‌भूत प्रतिभा बड़ी लगन और मेहनत से अर्जित की थी। आसानी से उन्हें कुछ नहीं मिला था।

वकालत की अपनी प्रेक्टिस के दौरान पंडित भार्गव ने निडर होकर उन 84 पीड़ित व्यक्तियों को निशुल्क कानूनी सहायता प्रदान की थी जिनके विरुद्ध पुलिस ने एक मामला दायर किया था, जिसमें यह आरोप लगाया गया था कि उन्होंने वर्ष 1930 में राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया था। ऐसा करके उन्होंने अपने सहयोगी वकीलों के लिए एक उदाहरण पेश किया था। उन्होंने श्री अर्जुन लाल सेठी, श्री बीसूलाल जीजोदिया, मु० अतरमोहम्मद, पंडित गोपीलाल शर्मा, मु० जमालुद्दीन मखमूर और अनेक अन्य व्यक्तियों के मामलों में पैरवी की तथा अन्य राजनीतिक मामलों संबंधी मुकदमों के लिए भी निशुल्क कानूनी सहायता प्रदान की, जिससे उनका राष्ट्र प्रेम प्रदर्शित होता है। वकालत के अपने लम्बे और सफल व्यवसाय के दौरान उन्होंने अनेकों ऐसे महत्वपूर्ण मामलों को अपने हाथों में लिया जिनमें संवैधानिक तथा सिविल कानून संबंधी मुश्किल और पेचीदा मसले जुड़े हुए थे। वह चुनाव संबंधी कानूनों के जाने-माने विशेषज्ञ थे तथा उन्होंने कई चुनाव-विवादों में पैरवी की। उन्होंने कांग्रेस जनों के चुनाव संबंधी मुकदमे निःशुल्क लड़े, भले ही इस कारण उन पर कितना ही भारी दिमागी बोझ रहा हो। वह मुकदमा लड़ने के लिए इतने अच्छे तरीके से तैयार हो कर जाते थे कि उनके विरोधी और न्यायालय उनकी विधि संबंधी सूक्ष्म दृष्टि से चकित रह जाते थे। इस बात पर सहसा विश्वास नहीं होता कि वह अपनी अक्षमता के बावजूद अपने कनिष्ठ वकीलों के पठन को सुनने मात्र से अपने दिमाग में इतना कुछ इकट्ठा कर लेते थे। वह जिस ढंग से सरल अंग्रेजी में मामले को पेश करते थे, उसकी मिसाल नहीं मिलती। पंडित जी की श्रम-साधना के कारण "बैंच" और "बार" दोनों ही उन्हें भारी सम्मान दिया करते थे।

पंडित भार्गव वकील समुदाय के नेता माने जाते थे और उनकी काफी मांग थी। वह उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के एक वरिष्ठ अधिवक्ता थे तथा कितने ही

वकील उन्हें अद्वितीय स्मरणशक्ति और असाधारण बुद्धिमत्ता के साथ मुकदमों की पैरवी करते हुए देखने के लिए अदालतों के कमरों में खड़े रहते थे। वर्ष 1976 में उनके वकालत करते हुए 50 वर्ष पूरे होने पर जोधपुर में राजस्थान बार ऐसोसिएशन ने एक स्वर्ण जयंती अभिनंदन समारोह आयोजित किया। श्री हरभाऊजी उपाध्याय ने उनको अजमेर का "सी॰आर॰ दास" बताया।

पंडित भार्गव अनेक नेताओं की चुनाव संबंधी रिट-याचिकाओं की पैरवी करने के लिए उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश और पंजाब भी गए। उन्होंने जयपुर में राजस्थान उच्च न्यायालय की एक पीठ स्थापित करने के लिए अथक प्रयास किए। वह राजस्थान बार काउंसिल के चेयरमैन भी रहे थे। भारत के भूतपूर्व न्यायाधीश न्यायमूर्ति अजित नाथ राय उनकी कानून संबंधी जानकारी से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने पंडित जी को कानून का एक चलता-फिरता "इनसाइक्लोपिडिया" बताया। वह एक स्वतंत्र न्यायापालिका के समर्थक थे। संसद सदस्य के रूप में उन्होंने न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग करवाने के लिए भी भरसक प्रयास किये।

उनका सार्वजनिक जीवन

चौबीस वर्ष की आयु में उन्होंने अपने सार्वजनिक जीवन की शुरुआत की और उस समय वर्ष 1927 में वह पहली बार ब्यावर नगर पालिका के सदस्य निर्वाचित हुए तथा उसकी शिक्षा संबंधी उप-समिति के संयोजक भी बनाये गये। वह अनेक वर्षों तक नगर पालिका के सदस्य रहे। बाद में संसदीय कार्य में अधिक व्यस्त रहने के कारण उन्होंने स्वेच्छा से उस पद को त्याग दिया। उन्होंने जिले की अन्य नगरपालिका निकायों में और अधिक गैर सरकारी सदस्य और चेयरमैन बनाए जाने की व्यवस्था करने हेतु सफल प्रयास किये। वह स्थानीय स्वशासी निकायों को लम्बे समय तक इनके चुनाव रोककर प्रशासकों के अधीन रखने की सरकार की नीति की हमेशा आलोचना किया करते थे।

वर्ष 1928 में वह कांग्रेस पार्टी में शामिल हुए तथा वर्ष 1936 में उन्हें कांग्रेस पार्टी के हरिपुर सत्र के लिए "डेलीगेट" चुना गया। वह वर्ष 1941 से 1945 तक तथा 1947 से 1948 तक अजमेर राजपूताना मध्य भारत प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष रहे। अजमेर क्षेत्र में उनकी पिछली सार्वजनिक सेवा को ध्यान में रखते हुए उन्हें वर्ष 1947 में अजमेर के मुख्य आयुक्त की सलाहकार परिषद् का उपाध्यक्ष नियुक्त कर दिया गया। वह वर्ष 1952 से 1957 तक अजमेर प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष रहे। वर्ष 1942 से 1960 तक तथा 1964 से 1968 तक वह कांग्रेस महासमिति के सदस्य रहे। वह राजस्थान प्रदेश कांग्रेस प्रबंध समिति और निर्वाचन समिति के सदस्य भी रहे। कांग्रेस पार्टी का विभाजन होने पर वह संगठन कांग्रेस में रहे।

अल्पसंख्यक और दलित वर्गों के पक्के समर्थक

पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव राजनीतिक कार्य से वर्ष में अनेकों बार अपने चुनाव क्षेत्र का दौरा किया करते थे। उन्होंने अल्पसंख्यकों—मुसलमानों, सिक्खों और ईसाइयों की समस्याओं का समाधान निकालने के लिए भारी योगदान किया। उन्होंने मुसलमानों को सुरक्षा प्रदान करने तथा देश के विभाजन के बाद शरणार्थियों का पुनर्वास करने के सराहनीय प्रयास किए। वह "मथुरा-किशोरीरमण शिक्षा समिति" के, जिसके अधीन अनेक स्कूल व कालेज चलाये जा रहे हैं, अनेक वर्षों तक चेयरमैन रहे। सनातन धर्म सभा, जैन समाज और आर्य समाज द्वारा समय-समय पर आयोजित समारोहों में भी उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान दिया। वह श्रम-विवादों को हल करने के लिए भी तत्पर रहते थे तथा आरम्भ से ही वह अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के उत्थान के लिए काम करते रहे। उन्होंने सरकारी कर्मचारियों और व्यापारियों के सच्चे हितों की रक्षा के लिए सदैव अपना समर्थन दिया।

श्रद्धांजलि

दिनांक 18 दिसम्बर, 1980 को पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव का स्वर्गवास हो गया। भारत के इस महान सपूत के निधन पर समूचे देश के राष्ट्रीय नेताओं और सुविख्यात लोगों ने अपना दुःख व्यक्त किया। उनके मित्रों, साथियों, परिचित व्यक्तियों, संसद सदस्यों, सामाजिक और शिक्षण संगठनों, कांग्रेस समितियों तथा अन्य अनेक संगठनों ने अपनी-अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। भारतीय संसद तथा राजस्थान और हरियाणा की विधान सभाओं में संवेदनाएं प्रकट की गईं और उनकी स्मृति में मौन रखा गया। राजस्थान बार काउंसिल तथा अनेक वकील एसोसिएशनों ने भी दिवंगत आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

भाग-दो
लेख

2416/LS F—2-A

2

मुकुट बिहारी लाल भार्गव—एक समर्पित व्यक्तित्व

डा० शंकर दयाल शर्मा*

श्री मुकुट बिहारी लाल भार्गव एक सुविख्यात विधिवेत्ता और सुप्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी थे। उन्होंने छात्रावस्था में ही युवकों में राजनीतिक जागरूकता बढ़ाने के लिए एक "स्टूडेंट्स सोसाइटी" स्थापित की थी।

बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्ध देश भक्ति की परबल भावना का और हमारी जनता में राजनीतिक चेतना का युग था। उस समय की मांग ने, जिसे मैंने स्वयं अनुभव किया था, श्री भार्गव जी के हृदय और आत्मा को झकझोर डाला। वह 25 वर्ष की आयु में सक्रिय राजनीति में कूद पड़े और उन्होंने 1942 के "भारत छोड़ो आंदोलन" सहित हमारे स्वतंत्रता संग्राम की अनेक महत्वपूर्ण गतिविधियों में भाग लिया। इस अवधि में श्री भार्गव जी को जेल भी जाना पड़ा। जेल में उन्हें विषाक्त भोजन दिया गया, जिसका उनकी नज़र पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा।

भारत छोड़ो आंदोलन से एक वर्ष पूर्व व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन के दौरान श्री भार्गव जी को ब्यावर कांग्रेस कमेटी का नेता बनाया गया। बाद में वर्ष 1946 में राजस्थान में उनकी राजनीतिक हैसियत और उनके विधि संबंधी व्यापक ज्ञान तथा वकील के रूप में उनके अनुभव को ध्यान में रखते हुए उन्हें संविधान सभा के लिए मनोनीत किया गया। वर्ष 1947 में श्री भार्गव जी अस्थायी संसद के सदस्य बने और उसके पश्चात् वह वर्ष 1952 में हुए पहले आम चुनावों से लेकर 1967 तक संसद के सदस्य रहे।

संसद में पंडित भार्गव ने एक कुशल वक्ता तथा एक सच्चे और निर्भीक जनसेवक के रूप में अपनी पहचान बनाई। वह अपनी सूक्ष्म स्मरण शक्ति और अपने विचारों के सुस्पष्ट प्रतिपादन की क्षमता के कारण अपने समय के श्रेष्ठ सांसद के रूप में उभरे।

---

*भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति

मैंने उनके कुछ भाषण पढ़े हैं जिनसे इस बात का प्रमाण मिलता है कि उन्होंने एक ईमानदार, सत्यनिष्ठ देशभक्त और संवेदनशील वकील के रूप में कड़ी मेहनत की है।

भार्गव जी पर महात्मा गांधी का गहरा प्रभाव पड़ा। बापू की प्रेरणा से ही उन्होंने वर्ष 1933 में ब्यावर में हरिजन सेवक संघ की स्थापना की और इसके प्रथम अध्यक्ष चुने गये। बाद में, 1953 में वह अजमेर राज्य हरिजन सेवक संघ के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। वह खादी के कट्टर समर्थक थे। उनका यह भी मानना था कि हमारी शिक्षा पद्धति का माध्यम अपनी मातृभाषा ही होनी चाहिए। उन्होंने नगरपालिका के सदस्य के रूप में स्थानीय क्षेत्र विकास के लिए उल्लेखनीय कार्य किया। ग्रामोद्योग विकास और महिला उत्थान संबंधी गांधी जी के दर्शन में उनका पूरा विश्वास था। वह विधवाओं के हितों के पक्षधर थे। वह महिला शिक्षा सदन के अध्यक्ष भी रहे। गांधी जी की भांति उन्होंने कानून को मात्र व्यवसाय नहीं समझा बल्कि इसका उन्होंने जनसेवा के साधन के रूप में उपयोग किया। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान उन्होंने अनेक स्वतंत्रता सेनानियों को निःशुल्क कानूनी सहायता प्रदान की और वह जरूरतमंद लोगों की सहायता करने के लिए सदा तैयार रहते थे।

श्री भार्गव न्यायोचित मामलों का पक्ष लेने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। यद्यपि 39 वर्ष की कम उम्र में ही उन्हें दिखना कम होने लगा था तथापि इससे उनके जनसेवा संबंधी कार्यों में कोई बाधा नहीं पहुंची।

मैं आशा करता हूं कि इनका जनसेवा के लिए उत्साह, कड़े परिश्रम के लिए जोश और राष्ट्र पुनर्निर्माण के लिए पूर्णरूपेण समर्पण हमारे देशवासियों को सदा प्रेरणा देता रहेगा।

3

एक सर्वतोमुखी व्यक्तित्व

बलि राम भगत*

पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव का एक सर्वतोमुखी व्यक्तित्व था— वह एक स्वतंत्रता सेनानी, एक राष्ट्रवादी, एक विधिवेत्ता, एक सांसद, एक राजनीतिक नेता, एक समाज सुधारक दलित वर्ग के धर्मयोद्धा, एक दूरदृष्टा और सबसे बढ़कर विपुल मानवीय गुणों से भरपूर एक सज्जन पुरुष थे। निश्चय ही उनमें दिल और दिमाग के उत्कृष्ट गुणों के साथ-साथ जनता की बेहतरी के लिये काम करने की उत्कट इच्छा का एक दुर्लभ समन्वय था।

उनका जन्म 30 जनवरी, 1903 को शाहपुरा में हुआ था, जो भूतपूर्व राजपूताना (जिसे अब राजस्थान प्रदेश के नाम से जाना जाता है) का एक छोटा सा रजवाड़ा था। बाद में वह अजमेर के निकट एक औद्योगिक नगर ब्यावर में रहने लगे, जो उस समय विजय सिंह पथिक, खरवा के राव गोपाल सिंह, सेठ दामोदर दास राठी, केसरी सिंह बरहेट, अर्जुन लाल सेठी, स्वामी कुमारनन्द जैसे अन्य अनेक ऐसे प्रतिष्ठित क्रान्तिकारियों की गतिविधियों का एक प्रमुख केन्द्र था, जो सामंतवादी व उपनिवेशवादी दासता की जंजीरों से मुक्ति पाने के लिये निरंतर संघर्ष कर रहे थे। वह 1928 में इंडियन नेशनल कांग्रेस में शामिल हुए और अजमेर राजपूताना मध्य भारत प्रदेश कांग्रेस के तथा अजमेर प्रदेश कांग्रेस कमेटी के भी अध्यक्ष बनाए गये। इसके अतिरिक्त वह सैंट्रल लेजिस्लेटिव असेम्बली, संविधान सभा और अस्थायी संसद के सदस्य भी रहे। इस प्रकार वह भारत के संविधान के निर्माताओं में से एक थे। आम जनता में उनकी लोकप्रियता इस बात से सिद्ध हो जाती है कि वह वर्ष 1952 से 1967 तक अर्थात् 15 वर्ष की लम्बी अवधि तक लोक सभा के सदस्य रहे। निचले स्तर से राष्ट्रीय स्तर तक के सार्वजनिक जीवन में उन्होंने अपनी अमिट छाप छोड़ी। वह एक समर्पित स्वतंत्रता सेनानी थे। अजमेर में भारत छोड़ो आन्दोलन का नेतृत्व करने के कारण उनको ब्रिटिश जेल जाना पड़ा। वहां उन्हें

*राजस्थान के राज्यपाल

आंग्ल-भारतीय सिपाहियों की निगरानी में रखा गया, जो अपने असामान्य, विकट और क्रूरतापूर्ण व्यवहार के लिये कुख्यात थे। अजमेर जेल में उनका कारावास उनके लिये घातक सिद्ध हुआ, क्योंकि उपनिवेशिक शासकों जो स्वतंत्रता संग्राम को कुचल देना चाहते थे, के कपटपूर्ण और क्रूर व्यवहार के कारण उनकी दृष्टि जाती रही। परन्तु दृष्टि न रहने पर भी वह अपने लक्ष्य से विचलित नहीं हुए और देश की स्वतंत्रता के लिये संघर्ष करते रहे।

उन्होंने अनेक देशों का दौरा किया और हर जगह अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व की छाप छोड़ी। वह वर्ष 1952 में बर्न में हुए 41वें अन्तर-संसदीय संघ सम्मेलन में भाग लेने के लिए भारतीय संसदीय ग्रुप शिष्टमंडल के सदस्य चुने गये। वह कॉक्स (स्विटजरलैंड) में "वर्ल्ड मॉरल रिआर्मेमेंट असेम्बली" में तथा लन्दन में "बर्न वर्ल्ड गवर्नमेंट कांफ्रेंस" में भाग लेने के लिये भी आमंत्रित किये गये थे। वह वर्ल्ड गवर्नमेंट हेतु विश्व सांसद ऐसोसिएशन के संविधान का प्रारूप तैयार करने के लिये गठित समिति के सदस्य भी चुने गये। उन्होंने अन्य अनेक यूरोपीय देशों का भी दौरा किया।

एक श्रेष्ठ वकील

पंडित भार्गव की चमत्कारिक स्मरण शक्ति सही सूचनाओं का भंडार थी। दृष्टिहीनता के बावजूद वह कानून के पेचीदा मसलों को आसानी से हल कर लेते थे कानून की बारीकियों को वह बड़े रोचक ढंग से समझाया करते थे। वह अपनी स्मरणशक्ति के बल पर दस्तावेज के कितने ही पृष्ठों को तथा विधि पुस्तकों को शब्दशः उद्धृत कर दिया करते थे। बड़े-बड़े सुप्रसिद्ध वकील भी मानते थे कि उनके समक्ष खड़ा होना बड़ी हिम्मत का और चुनौतीपूर्ण काम है। उनका अकाट्य युक्तियों से परिपूर्ण तर्कों का सुविन्यास, सुसंगत और व्यवस्थित ढंग से मामले को तैयार करना, स्पष्ट उच्चारण, भाषा और तथ्यों पर अधिकार चकित कर देता था। मुकदमों में प्रायः उन्हें विजय-श्री ही प्राप्त होती थी और कानून के विकास में उन्होंने भारी योगदान दिया। उनका कार्यालय एक कानूनी क्लिनिक की तरह था जहां कोई मामला परिश्रम, सुव्यवस्था और सूक्ष्मतम ब्योरे के सुविन्यास के साथ तैयार किया जाता था। वह अत्यधिक पेचीदा मामलों में बड़े अच्छे ढंग से दलीलें देते थे, वास्तविक तथ्यों को कभी नहीं भूलते थे और बोलते समय उनका तारतम्य कभी टूटता नहीं था। वकील समुदाय प्रायः सोचता था कि क्या प्रकृति ने उनके भीतर कोई अदृश्य कैमरा और टेप-रिकार्डर रख छोड़ा है? उनके अधिकांश सहयोगी और कनिष्ठ

वकील उनको चलता-फिरता "इनसाइक्लोपीडिया" कहते थे, जबकि कुछ दूसरे लोग उन्हें तथ्यों की और कानून की "डिक्शनरी" मानते थे। फिर भी वकीलों में इस बात पर आम सहमति थी कि मुकुट बिहारी लाल निश्चय ही राजस्थान के वकील समुदाय के मुकुट में एक रत्न हैं।

एक सुयोग्य सांसद

वह एक श्रेष्ठ सांसद भी थे। हमारे देश में ऐसे बहुत कम व्यक्ति हैं जिनको सेंट्रल लेजिस्लेटिव असेम्बली, संविधान सभा, अस्थायी संसद और फिर तीन बार लगातार लोक सभा के लिए चुने जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो। रिकार्ड से यह पता चलता है कि जब वह इन विधायी निकायों के सदस्य थे तो वह अपने विचारों को इतने बढ़िया तरीके से स्पष्ट और जोरदार रूप में तथा युक्तियुक्त और तर्कसंगत ढंग से रखते थे, कि उनसे भिन्न मत रखने वाले भी उनके विचारों से सहमत हो जाया करते थे।

वह एक सच्चे राष्ट्रवादी थे और हिन्दी के प्रति उनका प्रेम सर्वविदित था। लोक सभा में अपने प्रथम भाषण के दौरान प्रक्रिया तथा कार्य संचालन सम्बन्धी नियमावली के नियम 59 का उन्होंने विरोध किया था जिसमें विदेशी भाषा को अनावश्यक महत्व दिया गया है। श्री भार्गव की यह दलील थी कि राष्ट्रवाद की कड़ियों की मजबूती के लिये राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग आवश्यक है। विदेशी भाषा आम जनता को भावनात्मक और सांस्कृतिक रूप से एक सूत्र में नहीं बांध सकती और इसलिये राष्ट्रीय एकता की स्थापना में सहायक नहीं हो सकती। उन्होंने तत्कालीन प्रधान मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू की नाराज़गी की परवाह न करते हुए उस हिन्दू कोड बिल का विरोध किया जिसे पारित करवाना पंडित नेहरू ने प्रतिष्ठा का विषय बना लिया था। श्री भार्गव ने हिन्दू धर्म ग्रंथों से अनेक उद्धरण दे कर उक्त विधेयक के विरुद्ध अपना पक्ष प्रस्तुत किया। श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख ने उनको सलाह दी कि वह पंडित नेहरू को इस संबंध में इतना नाराज़ न करें, परन्तु वह अडिग रहे, क्योंकि विधेयक का विरोध उनकी अपनी दृढ़ धारणा पर आधारित था।

वह लोकतंत्र के पक्के समर्थक और एक सच्चे समाजवादी थे। वह वित्तीय संस्थाओं और प्रमुख उद्योगों पर सामाजिक नियंत्रण के लिये पूरा जोर लगाते रहे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि बैंकों और बीमा कारोबार का राष्ट्रीयकरण करके तथा अनिवार्य बचत योजना लागू करके सरकार के वित्तीय ढांचे को मजबूत बनाया जाना चाहिए। उन्होंने प्रमुख उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करने पर भी जोर दिया था। विश्व की स्थिति को जिस प्रकार उन्होंने समझा, उससे उनके सोच की एक झलक मिलती है। वास्तव में जो बात उन्होंने 44 वर्ष पूर्व कही थी, वह आज भी उतनी ही प्रासंगिक है। उन्होंने वर्ष 1952 में

बर्न में भारत के प्रतिनिधि के रूप में जो भाषण दिया था उसका निम्नलिखित उद्धरण इस बात का एक सटीक प्रमाण है:

> "यह बात सच है कि विश्व के कुछ देश औद्योगिक और आर्थिक महिमा की चरम अवस्था में है और वहां के निवासियों का जीवन-स्तर काफी ऊंचा है, जबकि दुनिया के दो-तिहाई लोग आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। विश्व शान्ति स्थापित करने के प्रति ईमानदारी की कसौटी यह है कि पश्चिम में औद्योगिक और आर्थिक दृष्टि से उन्नत देश अपने संसाधनों को इकठ्ठा करके विकासशील देशों के उन अभागे लोगों के जीवन-स्तर को उठाने के लिये, जो गरीबी, बीमारी और मलिन अवस्था में रहते हैं, कितना देने को तैयार हैं और यह वित्तीय सहायता बिना किसी शर्त दी जानी चाहिए, अन्यथा शान्ति स्थापित करने की बातों का कोई अर्थ नहीं रह जाता।"

उन्होंने भाग "ग" राज्यों के हितों की पुरजोर वकालत की जो निश्चय ही सराहनीय है। उन्होंने भाग "ग" राज्यों के राजनीतिक और आर्थिक विकास पर जोर दिया। उन्होंने इस बात पर खेद व्यक्त किया कि जबकि शेष भारत में वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव कराये जाने हैं, भाग "ग" राज्यों को उससे अलग रखा गया है। उन्होंने इस बात पर दुःख व्यक्त किया कि इन राज्यों में लोकतंत्रीय संस्थाओं की स्थापना की दिशा में कोई विशेष कार्य नहीं किया गया। उन्होंने अजमेर, भोपाल, कूर्ग और त्रिपुरा जैसे भाग "ग" राज्यों का उनसे जुड़े राज्यों में विलय करने का आग्रह किया। उन्होंने विशेष रूप से अजमेर का राजस्थान में विलय करने का आग्रह किया, चूंकि ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और भाषा की दृष्टि से यह उसका अभिन्न अंग रहा है।

लोक हित संरक्षक

उनका जन्म और पालन-पोषण ऐसे सामंतवादी समाज में हुआ था, जिसने पुरातन व्यवस्था को चुनौती देने के लिये किसी व्यापक राजनीतिक और सामाजिक आंदोलन का अनुभव नहीं किया गया। था। उन्होंने शताब्दियों से कुपोषित, फटे-हाल, भोली-भाली और गरीब जनता पर तत्कालीन शासकों द्वारा किये जाने वाले क्रूरतापूर्ण अत्याचारों को देखा था। किसी भारतीय रियासत कानून के शासन के बारे में सोचा ही नहीं जा सकता था। महात्मा गांधी ने भी महसूस किया था "कि प्रत्येक भारतीय राजा अपने राज्य में हिटलर है। वह अपनी प्रजा के लोगों पर गोली चला सकता है, उस पर कोई कानून लागू नहीं होता। हिटलर के पास इससे अधिक शक्ति नहीं है।" (हरिजन, 3 अक्तूबर, 1939) संक्षेप में, प्रजा के लिये शासक द्वारा कहा गया शब्द ही कानून है और उसे कोई भी कानून बनाने का पूरा अधिकार है और उसकी न्याय करने की शक्ति असीम है।

राजपूताना राज्यों में कोई ऐसी प्रतिनिधि संस्था नहीं थी, जिसके साथ लोग अपने आप को सम्बद्ध कर सकते। यदि ऐसी कुछ संस्थाएं उपलब्ध थी, तो वे जयपुर, जोधपुर, उदयपुर और बीकानेर जैसे कुछ राज्यों में ही थी, परन्तु उनको विधान बनाने अथवा कराधान की शक्ति प्राप्त नहीं थी। बटलर कमेटी को राजाओं द्वारा दिये गये एक-तरफा साक्ष्य दिये जाने पर भी इस कमेटी को यह कहना पड़ा कि तथाकथित सुधार, निःसंदेह, अधूरे अथवा केवल कागजी कार्यवाही मात्र हैं।

युवा भार्गव ने यह दृढ़ प्रतिज्ञा की थी कि वह तत्कालीन अव्यवस्थित राजनीतिक माहौल में काम करेंगे और आम जनता को सामाजिक न्याय दिलायेंगे। उन्होंने विशेष रूप से केन्द्र-शासित अजमेर, मेरवाड़ क्षेत्र और आम तौर पर शेष राजपूताना की रियासतों में जागीरदारी, मुआफीदारी और बिस्वादारी के विरुद्ध निर्भीक होकर व्यापक अभियान चलाया।

राजस्थान में कृषि सुधार क्षेत्र में निश्चय ही यह एक बहुत बड़ा काम था। उन्होंने ऐसे लोगों का साथ दिया जिनकी जबान पर ताले पड़े रहते थे, जो भोले-भाले और गरीब किसान थे। उन्होंने गूंगे लोगों को कानूनी आवाज़ का सहारा दिया। यह संघर्ष निर्बाध रूप से चलता रहा और अंततोगत्वा जो किसान काश्तकार मात्र थे और कृषि श्रमिक थे उनको पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव के गतिशील नेतृत्व में "खातेदारी" अधिकार प्राप्त हो गये। श्री भार्गव के अथक प्रयासों के परिणामस्वरूप संसद ने "दि अजमेर टेनेंसी एण्ड लैंड रिकार्ड्स एक्ट, 1950" पास किया। इस्तमरारदारी पद्धति के अधीन उनके प्रयासों को एक बार तब फिर सफलता मिली, जब भूमि कर एक-तिहाई से घट कर एक बटा आठ रह गया। वह जागीरदारी प्रणाली के अधीन जबरन मज़दूरी कराने की प्रचलित प्रणाली के विरुद्ध ज़ोरदार संघर्ष करते रहे। वास्तव में इस बात को सुनिश्चित करने के लिये वह अथक प्रयास करते रहे कि सामंतवादी व्यवस्था में प्रशासन में मानवोचित व्यवहार हो और उसका लोकतंत्रीकरण हो।

संक्षेप में, पंडित भार्गव में न्याय, निष्पक्षता और स्वतंत्रता की सदम्य भावना भरी हुई थी, जिसे उन्होंने प्रमाणित भी किया। एक संसद सदस्य, जन सेवक, वकील के रूप में और अपने निजी जीवन में भी उन्होंने गांधी युग के नैतिक मूल्यों को अपनाया तथा वह संविधान और विधिशासन के प्रति पूर्णतया समर्पित रहे।

4

तेजस्वी देशभक्तः पंडित भार्गव

—नाथूराम मिर्धा*

स्वर्गीय पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव स्वतंत्रता सेनानी, जागरूक सांसद और तेजस्वी देशभक्त होने के नाते निश्चय ही भारत माता के एक सच्चे रत्न थे, जिनका आचरण भावी पीढ़ियों को निःस्वार्थ सेवा और देशभक्ति के उज्ज्वल मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित करता रहेगा।

प्रयाग विश्वविद्यालय से एल॰एल॰बी॰ और इतिहास में एम॰ए॰ की डिग्री प्राप्त करने के बाद जब उन्होंने जीवन के संघर्ष में पदार्पण किया तो उनका ध्यान देश की दासता और दयनीय स्थिति की ओर गया। ब्यावर में आयोजित "आल इंडिया प्रिंसली स्टेट्स पब्लिक काउंसिल" के राजनीतिक सत्र की स्वागत समिति के चेयरमैन के रूप में उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि "राष्ट्र व्यक्ति से ऊपर है।"

तत्पश्चात् उनके मन में प्रकाशित देशभक्ति की ज्वाला इतनी तीव्र हो गयी कि अन्य देशभक्त राष्ट्रीय लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये उनका अनुसरण करने लगे। वर्ष 1931 में पहला राजपूताना किसान मजदूर सम्मेलन हुआ था जिसकी उन्होंने अध्यक्षता की थी। इसमें स्व॰ अर्जुन लाल सेठी द्वारा दिये गये भाषण को न्यायालय ने देशद्रोह की एक गतिविधि माना था और श्री सेठी को न्यायालय में पेश होने के लिये वारंट जारी किये थे। इस अवसर पर पंडित भार्गव की कुशाग्रता व प्रतिभा देखने को मिली। उनके युक्तियुक्त तर्कों को सुन कर न्यायालय को श्री सेठी को रिहा करने का आदेश देना पड़ा।

वर्ष 1937 में पंडित भार्गव ने राजपूताना मध्य भारत विद्यार्थी सम्मेलन आयोजित किया। वर्ष 1941 में व्यक्तिगत सत्याग्रह के दौरान पंडित जवाहर लाल नेहरू ने उनको प्रावर कांग्रेस कमेटी का प्रथम सर्वेसर्वा नियुक्त किया। उन्होंने इस हैसियत से नगरपालिका के कार्यालय पर तिरंगा झंडा फहराया और लोगों में स्वतंत्रता की भावना इस

* स्व॰ श्री नाथूराम मिर्धा संसद सदस्य थे।

तरीके से जगाई कि विदेशी शासन भी चकित रह गया। इसके लिये, उन्हें जेल जाना पड़ा। इस बीच वह राजपूताना, अजमेर, मेरवाड़ और मध्य भारत कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। उनकी अध्यक्षता में "भारत छोड़ो आन्दोलन" ने तेजी पकड़ी। इसके परिणामस्वरूप उनको 1942 में जेल में बन्द कर दिया गया और इस बार विदेशी शासकों द्वारा विषाक्त भोजन दिये जाने के कारण वह अपनी दृष्टि खो बैठे। परन्तु वह इस दुर्घटना से विचलित नहीं हुए, वह उसी उत्साह से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते रहे और यह सिद्ध कर दिखाया कि "वीर पुरूष बाधाओं से विचलित नहीं होते और मृत्यु भी उनके सामने नतमस्तक हो जाती है।"

वह वर्ष 1945 में "सेंट्रल लेजिस्लेटिव असेम्बली" के सदस्य निर्वाचित हुए। उसी वर्ष वह संविधान सभा के भी सदस्य बने। वह वर्ष 1950 से 1952 तक अस्थायी संसद के भी सदस्य रहे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के ठीक बाद हुए साम्प्रदायिक दंगों के दौरान उन्होंने साम्प्रदायिक सद्भावना बनाये रखने के लिये प्रमुख भूमिका निभाई। उनके अथक प्रयासों के कारण ही (राजस्थान के) पवित्र स्थलों की रक्षा की जा सकी थी। उनके शौर्यपूर्ण कार्यों का ही परिणाम है कि आज भी लाखों धर्मावलम्बी पवित्र स्थल अजमेर शरीफ़ जाते हैं और फूलों की चादर चढ़ाते हैं।

पंडित भार्गव एक दक्ष विधिवेत्ता थे। उन्हें एक चलता-फिरता "इनसाइक्लोपीडिया" माना जाता था। यद्यपि उनकी दृष्टि जाती रही थी, तथापि उनकी स्मरण शक्ति लाज़वाब थी। जब कभी वह उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में बोलते तब बैंच (पीठ) और वकील समुदाय दोनों ही हवालों सहित दिये जाने वाले उनके तर्कों को सुनकर रोमांचित हो जाते थे।

वर्ष 1952 में पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव अजमेर से भारी बहुमत से निर्वाचित हुए। वह लगातार तीन बार लोक सभा के लिए निर्वाचित हुए। इस अवधि में समाज के गरीब और उपेक्षित वर्ग के कल्याण के लिये तथा हिन्दी भाषा के संवर्धन के लिये उनके योगदान को इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा जायेगा।

वर्ष 1972 में, इस परम राष्ट्रवादी, संसदीय प्रणाली के पक्के समर्थक और अग्रणी स्वतंत्रता सेनानी को तत्कालीन प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने प्रशस्ति स्वरूप "ताम्र-पत्र" दे कर सम्मानित किया।

पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव, जो श्री चन्दू लाल भार्गव के पुत्र थे और जिनका जन्म 30 जनवरी 1903 को हुआ था, दिनांक 18 दिसम्बर, 1980 को अनन्त सत्ता में विलीन हो गये। भारत माता का यह लाड़ला सपूत, जो धरती पर अपनी ऐसी सुगंध छोड़ गया, जिसे देश के हर एक कण में सदैव महसूस किया जाता रहेगा।

5

पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव: भारत का एक महान् सपूत

—विद्या चरण शुक्ल*

स्वर्गीय पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव एक विद्वान विधिवेत्ता और सुप्रसिद्ध सांसद थे जिनको भारतीय गणतंत्र की महान हस्तियों में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। मुझे दूसरी तथा तीसरी लोक सभा में संसद् में पंडित भार्गव के साथ काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अतः मैं उनसे रायः मिलता रहता था और सांसद के रूप उनके विशिष्ट कार्य-निष्पादन को देखता रहता था। मुझे याद है कि जब वह संसद् में बोलने के लिये खड़े होते थे तो सदस्य प्रायः उनको पूर्ण शांति से सुनते थे।

पंडित भार्गव का जन्म 30 जनवरी, 1903 को भूतपूर्व रियासत अजमेर में हुआ था। 77 वर्ष की आयु में 18 दिसम्बर, 1980 को उनका स्वर्गवास हो गया था। वह युवावस्था में ही स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। उनको अनेक बार गिरफ्तार किया गया और भिन्न-भिन्न अवधि के लिये जेल भेजा गया। यद्यपि 39 वर्ष की आयु में ही उनकी दृष्टि जाती रही परन्तु इस अभाव के बावजूद वह अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ते रहे। वास्तव में उनकी दृष्टि खो जाने के बाद ही उनका सार्वजनिक जीवन शिखर पर पहुंचा। उदाहरणार्थ दृष्टि खो जाने के बाद ही वह वर्ष 1945 में केन्द्रीय विधान सभा (सेंट्रल लेजिस्लेटिव असेम्बली) और 1946 में संविधान सभा के लिये निर्वाचित हुए और हमारा संविधान तैयार करने में गहरी रुचि ली। बाद में, वर्ष 1952 में उन्होंने स्विटज़रलैंड में बर्न में 41वें अन्तर-संसदीय सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व किया।

स्वर्गीय एस०के० दफ्तरी ने, जोकि भारत के अत्यन्त प्रतिभावान विधिवेत्ताओं में से एक थे, पंडित भार्गव को उनकी विधि संबंधी दक्षता, मामले के स्पष्ट प्रतिपादन और उनके कायल करने वाले तर्क के लिये प्रशंसा की थी। चूंकि पंडित भार्गव की दृष्टि युवावस्था

*पूर्व केन्द्रीय खान संसाधन तथा संसदीय कार्य मंत्री।

में ही नहीं रही, वह अपने सहायकों से मुकदमें के तथ्यों को सुनते थे और उन पर कानून की व्यवस्था लगाते थे और अपनी वकालत से न्यायाधीश को प्रभावित करते थे। मुझे पता चला है कि जब वह न्यायपीठ के सामने अपने तर्क प्रस्तुत करते थे तो न्यायाधीश मामले के विभिन्न पहलुओं पर उनसे स्पष्टीकरण मांगने के लिए बीच में नहीं बोलते थे। क्योंकि पंडित भार्गव अत्यन्त स्पष्ट ढंग से अपने मामले को प्रस्तुत करते थे। यह कहा जाता था कि "पंडित भार्गव न्यायालय में अपना मामला ऐसे प्रस्तुत करते थे कि उसमें एक वास्तुशिल्पी के परिष्करण और एक इंजीनियर की योग्यता परिलक्षित होती थी।" वह वकील समुदाय में इतने सफल व्यक्ति माने जाते थे कि उनको राजस्थान का सी०आर० दास कहा जाता था।

पंडित भार्गव पक्के कांग्रेसी थे। यद्यपि वकालत के व्यवसाय से उनको पर्याप्त आय होती थी फिर भी वह सादा जीवन व्यतीत करते थे। उनकी सादगी और न्यायोचित मामलों के पक्षधर होने के उत्साह की प्रशंसा करते हुए किसी ने कहा था कि पंडित भार्गव कन्दरा में रहते थे पर गुलामों की सेवा करते थे।

आज जबकि हम नैतिक संकट और मूल्यों के ह्रास का सामना कर रहे हैं, पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव के विचार हमारी संस्कृति और विरासत के मूल मूल्यों में अपने विश्वास को सुदृढ़ करने के लिए प्रेरणा के स्रोत बन सकते हैं। मैं यह कह कर उनकी स्मरणशक्ति की सराहना करना चाहूंगा कि भारत एक महान देश है और हम भारतीय न्यायोचित कार्य करने में पीछे नहीं हटते जैसाकि पंडित भार्गव ने अपने जीवन काल में किया। हम भी पंडित भार्गव तथा ऐसे अन्य अनेक प्रतिष्ठित नेताओं की तरह जनहित के लिये समर्पण भाव से काम करने के लिए सक्षम हैं।

6

श्री मुकुट बिहारी लाल भार्गव—गरीबों का मसीहा

—मोहन लाल श्रीमल*

एक प्रतिष्ठित स्वतंत्रता सेनानी, एक महान वक्ता, एक महान सांसद, एक निःस्वार्थ देशभक्त, एक अनुभवी वकील, सामाजिक न्याय का समर्थक, अंग्रेजों के अत्याचारों से पीड़ित जनता की सेवा-सुश्रूषा करने वाला एक डॉक्टर और सब से बढ़कर निर्धनता से दुखी जनता के साथ भरपूर सहानुभूति रखने वाला महामानव कोई और व्यति नहीं था, बल्कि श्री मुकुट बिहारी लाल भार्गव ही था जो सर्वतोमुखी प्रतिभावान था। वह आल इंडिया बार काउंसिल का बहुमूल्य आभूषण था। पंडित भार्गव का जन्म 30 जनवरी, 1903 को भूतपूर्व राजपूताना (जिसे अब राजस्थान राज्य कहा जाता है) में एक छोटे से रजवाड़े शाहपुर में हुआ था। उनका जन्म एक मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ था, उनके माता-पिता धर्मनिष्ठ थे और गरीबों की सेवा करते थे और भगवान कृष्ण के प्रति समर्पित थे। अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद पंडित भार्गव ने 1926 में वकालत का व्यवसाय आरम्भ किया। शीघ्र ही वह बुलन्दी पर पहुंच गये। वास्तव में पंडित भार्गव की अद्वितीय स्मरणशक्ति ने उनको जीवित विश्वकोष बना दिया। स्वर्गीय श्री कुमारमंगलम (एक सुप्रसिद्ध विधिवेत्ता और वकील) के शब्दों में श्री भार्गव अपने आप में तथ्यों और विधि दोनों के शब्दकोष थे, उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय में स्वर्गीय मोहनलाल सुखाड़िया की चुनाव संबंधी अपील की पैरवी की। उस समय माननीय न्यायाधीश हिदायतुल्ला न्यायपीठ के अध्यक्ष थे, उनके तर्क सुनने के बाद माननीय न्यायाधीश हिदायतुल्ला ने कहा "यह है जीवित विश्वकोष"। मुझे न्यायालय में उनके साथ भी पेश होने का और राज्य के अतिरिक्त एडवोकेट जनरल के रूप में उनके विरुद्ध भी पेश होने का अवसर प्राप्त हुआ था। पंडित भार्गव अपने तर्कों को युक्तिसंगत तरीके से पेश करते थे और उनमें दूसरे लोगों को अपने तर्क से सहमत कराने की शक्ति थी। वह अपना पक्ष जब तैयार करते थे तो उसमें एक वास्तुशिल्पी की सूक्ष्म दृष्टि और इंजीनियर की योग्यता परिलक्षित होती थी।

---

*अध्यक्ष, सिक्किम पिछड़ी जाति आयोग तथा अध्यक्ष, सिक्किम वेतन आयोग।

वह विधि संबंधी तथा तथ्यात्मक सामग्री में से ईंट और गारे का चयन पूरी सावधानी से करते थे। उनके तर्कों के प्रभावीपन के पीछे प्रमाण विधि का भंडार सुरक्षित रहता था। वह अपने पक्ष को हमेशा पूरे विश्वास के साथ पेश करते थे जिसका प्रभाव अदालत तथा विरोधी पक्ष—दोनों पर पड़ता था और हलचल पैदा कर देता था। उनकी वकालत, जानकारी और विधि संबंधी योग्यता भावी पीढ़ियों के लिये प्रकाश स्तम्भ का काम करती रहेगी। वह सामाजिक परिवर्तन लाने के लिये कानून को सदा शक्तिशाली और प्रबल साधन मानते थे, उनके नाम में सबसे अधिक ऐसे मुकदमें हैं जो उन्होंने निःशुल्क लड़े थे। उनके कार्यालय को "वैधिक क्लिनिक" कहा जा सकता था जहां पीड़ित लोगों के विधि संबंधी जख्मों का इलाज हर समय होता था।

सामाजिक एवं राजनीतिक उपलब्धियां

पंडित मुकुट बिहारी लाल की महान और शक्तिशाली वकील होने की ख्याति झोपड़ी से महलों तक फैल चुकी थी और आय होने लगी थी। परन्तु आम जनता के कष्ट उनको न्यायालय से मानव सेवा की ओर ले आये। उन्होंने फूलों की सेज की अपेक्षा कांटों के मार्ग को तरजीह दी, उन्होंने ब्रिटिश-इंडियन सिक्कों की परवाह न कर आत्म त्याग के जीवन को अपनाया।

उस समय के प्रख्यात स्वतंत्रता सेनानियों जैसे कि मेवाड़ के मानिक लाल वर्मा, मारवाड़ के जयनारायण व्यास, ब्यावर के स्वामी कुमारानन्द, जैसलमेर के हरिहर गोपाल, जयपुर के अर्जुन लाल सेठी और हीरालाल शास्त्री, विजय सिंह पाठक, कारवा के राव गोपाल सिंह तथा सेठ दामोदर दास राठी ने इस जोशीले युवा वकील में गरीबों के साथ भरपूर सहानुभूति और हर आंख से आंसू पोंछने की उत्कट इच्छा देखी थी। उन्होंने उनको अपने सीने से लगाया और एक मूल्यवान आभूषण के रूप में कांग्रेस में शामिल कर लिया। राजनीति की मुख्यधारा में आ जाने के बाद उन्होंने रजवाड़ों तथा केन्द्र शासित अजमेर मारवाड़ प्रदेश में जागीरदारी, मुआफीदारी और बिस्वेदारी प्रथाओं के विरुद्ध अपना ऐतिहासिक और वीरतापूर्ण अभियान चलाया। यह राजस्थान में भूमि सुधारों के इतिहास में महत्वपूर्ण कदम था। इस युवक वकील ने आरावली पहाड़ी की घाटियों में दौरे किये और गर्जना की जिसकी प्रतिध्वनि राजस्थान के गांव-गांव से सुनाई देने लगी। गरीबी के मारे किसानों को जिनकी जिह्वा बन्द रहती थी, ऐसे गूंगे लोगों को कानून का सहारा मिल गया और उन्होंने अवसर का लाभ उठाया। पंडित मुकुट बिहारी लाल ने भूमिहीन श्रमिकों को नेतृत्व प्रदान किया जिससे वे खातेदार काश्तकार बन सके।

इस अवधि के दौरान पंडित मुकुट बिहारी लाल ने कुछ चुनींदा मामलों में वकालत का काम किया था जो मुख्यतः राजनीतिक कार्यकर्ताओं के लिये और निःसहाय गरीब लोगों के लिये था जिन पर ब्रिटिश राज के समर्थकों द्वारा अत्याचार किये जाते थे। पंडित भार्गव का मकान रजवाड़ों के निष्कासित देशभक्तों तथा राजनीतिक कार्यकर्ताओं के लिये शरणस्थल बन गया था। उनकी न केवल रक्षा की जाती थी या न्यायालय में निर्दोष साबित किया जाता था बल्कि उनको पंडित भार्गव की सरल स्वभाव वाली पत्नी राधारानी बड़े प्यार से और परिवार का सदस्य मानकर उदारतापूर्वक उनका सम्मान करती थी और उनको सदा मां और बहन का प्यार देती थी।

चूंकि अजमेर केन्द्र प्रशासित क्षेत्र था, बड़े-बड़े ब्रिटिश राजनीतिज्ञ काफी संख्या में वहां रहते थे। उन्होंने "फूट डालो और राज करो" की नीति क्रियान्वित करने का प्रयास किया था परन्तु विशाल हृदय वकील ने अपने सेवा पथ से जरा भी विचलित होने से इनकार कर दिया। उन्होंने देश की पुकार को सुना और राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की सेवा में अपने आपको समर्पित कर दिया। उन्होंने अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता के लिये मेहनत से और उत्साहपूर्वक कार्य किया। जब उन पर किसी प्रकार के प्रलोभन और छल-कपट के प्रयास सफल नहीं हुए तो अंग्रेजों ने वर्ष 1941 में उनको जेल में डाल दिया। जैसे ही वह रिहा हुए, उनको वर्ष 1942 में चलाए गए "भारत छोड़ो" आन्दोलन के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिया गया और उनको आंग्ल-भारतीय सिपाहियों की देखरेख में रख दिया जो स्वतंत्रता सेनानियों पर असामान्य और बर्बरतापूर्ण अत्याचार करने के लिये कुख्यात थे। वर्षा ऋतु में हम में से अधिकांश लोगों को जो पीठ का दर्द होता है वह हमें अंग्रेजी हुकूमत के तथाकथित प्रतिनिधियों द्वारा किये गये अत्याचारों और अतिकुत्सित व्यवहार की याद दिलाता है।

पंडित भार्गव जेल में से ऐसे बाहर निकले जैसे भट्ठी में से तपकर निकलने वाला सोना अधिक शुद्ध व चमक वाला होता है। आम जनता ने पंडित भार्गव की सूक्ष्म दृष्टि, समझदारी, अदम्य इच्छाशक्ति और असीम धैर्य को माना और सराहा। दुर्भाग्य से पंडित भार्गव की, जेल में, दृष्टि जाती रही। इसके बावजूद वर्ष 1945 में वह केन्द्रीय विधान सभा के लिये भारी बहुमत से विजयी हुए। वर्ष 1946 में संविधान सभा के वर्चस्वी और प्रभावशाली सदस्य बने और उनको हमारे संविधान निर्माताओं में से एक होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वह अस्थायी संसद के भी सदस्य बने। आम जनता में उनकी लोकप्रियता

इस बात से स्पष्ट होती है कि वह 1952 से लेकर वर्ष 1967 तक अर्थात् 15 वर्ष तक लोक सभा के सदस्य रहे। उन्होंने अनेक देशों में हमारे देश का प्रतिनिधित्व किया और अपना पक्ष प्रस्तुत किया और वहां पर अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व की छाप छोड़ी। वर्ष 1952 में बर्न में हुए 41वें अन्तर-संसदीय संघ सम्मेलन में भारतीय संसदीय ग्रुप के शिष्टमंडल के सदस्य के रूप में उनका चयन किया गया था। उनको क्रांक्स (स्विट्जरलैंड) में वर्ल्ड मारल रिआर्मेमेंट असम्बली में तथा लन्दन में हुई वन वर्ल्ड गवर्नमेंट कांफ्रेस में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया गया था। उनको वर्ल्ड गवर्नमेंट के लिये वर्ल्ड एसोसिएशन ऑफ पार्लियामेंटेरियन्स का संविधान तैयार करने वाली समिति का
भी सदस्य चुना गया था।

पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव ने हमें एक शिक्षा दी है। जो लोग अधिक लोगों की (जो निर्धन हैं) सेवा नहीं कर सकते, वे निश्चय ही कुछ धनवान लोगों की रक्षा नहीं कर सकते। जहां कलम की शक्ति असफल हो जाती है वहां उसका स्थान गोली ले लेती है। हमने विकास का मार्ग चुना है, इन्कलाब का नहीं, निर्धन अधिक कुछ नहीं मांगते, वे अधिकारों के लिये लड़ते हैं। यदि हम उनको उनका देय भाग नहीं देते तो "विकास" शब्द का स्थान "इन्कलाब" ले लेगा और वह हम सब के लिये बहुत दुर्भाग्यपूर्ण दिन होगा।

7

पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव—विधि जगत का एक सितारा

—बी० पी० बेरी*

पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव को 1942 के "भारत छोड़ो" आंदोलन में बंदी बनाया गया था उनके रिहा होने पर मैंने उनको विधि जगत में एक उभरते हुए सितारे के रूप में देखा। मैं कुछ मामलों में उनका सहयोगी रहा और मैंने महसूस किया कि उनकी स्मरणशक्ति अत्यधिक तीव्र थी। उनको पेचीदा करम सारिणी में सैकड़ों नाम याद थे और उनमें कमाल की शुद्धता थी। मैं कुछ मामले में उनके विरुद्ध भी खड़ा हुआ मैंने पाया कि उनकी दृष्टि कमजोर होती जा रही है जो इस बात से स्पष्ट था कि उनके नोट्स में अनेक शब्द बहुत मोटे-मोटे अक्षरों में लिखे हुए देखे गए। यह बड़े खेद की बात है कि बाद में उनकी दृष्टि बिल्कुल जाती रही।

वह किसानों की, विशेषकर इस्तमरारी क्षेत्रों के किसानों का बचाव करने के लिए बहुत उत्सुक रहते थे। संभवतः उनके कड़े परिश्रम के कारण ही अजमेर-मारवाड़ काश्तकारी कानून पास हुआ था। मैं उस विधेयक से संबंधित माननीय जयराम दास दौलत राम की अध्यक्षता में प्रवर समिति के समक्ष सामन्तवादी पक्ष प्रस्तुत करने के लिए उनके विरुद्ध पेश हुआ था, मैं मानता हूं कि मेरा पक्ष बहुत मजबूत नहीं था, फिर भी प्रवर समिति के सभापति व सदस्यों के निष्पक्ष होने के कारण मेरे मुवक्किल कुछ हद तक सफल हो गये। मुझे उस मामले में पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव, संसद सदस्य की ईमानदारी और जबरदस्त उत्साह को याद कर बड़ी प्रसन्नता होती है।

मैं अनेक मामलों में उनके विरुद्ध पेश हुआ था। उनकी तैयारी बड़ी जबरदस्त होती थी और इसलिए हम में से अधिकांश वकीलों को उनके बराबर तैयारी करने के लिये उनसे प्रेरणा मिलती थी। वह किसी ऐसी बात को नहीं छोड़ते थे जो उनके मुवक्किल के

*राजस्थान उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश।

पक्ष में हो और न ही उसका प्रमाण प्रस्तुत करने में चूकते थे। चुनाव याचिकाओं के विषय पर उनका पूरा अधिकार था और मैंने सम्भवतः सबसे अधिक मामलों में उनका विरोध किया था। उनकी स्पृहणीय स्मरणशक्ति और भरपूर तैयारी ने उनकी वकालत को पूर्णता तक पहुंचा दिया।

मुझे एक अनोखा अनुभव हुआ जब पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव अपनी चुनाव याचिका के संबंध में मेरे मुवक्किल बने। स्वभावतः इस मामले की उनको गहरी चिन्ता होती थी और उनकी पूरी तैयारी भी थी परन्तु वह साधारण मुवक्किल की तरह ही अपने वकील के निर्णय का आदर करते थे। उनके साथ बहस करने में मजा आता था।

उन्होंने अपने जीवन में हजारों मुकदमों में बहस की होगी परन्तु एक भारी-भरकम और उतना ही सनसनीखेज मुकदमा था "जयपुर गोलीकांड की जांच" का जिसमें वे प्रशासन के पक्ष की पैरवी कर रहे थे। मैं उस आयोग का चेयरमैन था जिसको प्रतिवेदन का अध्ययन प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा किए जाने की संस्तुति की गई थी। उन्होंने मुझे अनेक बार बताया कि वह उनके जीवन का सबसे बड़ा व्यावसायिक काम है। अन्तिम बहस के रूप में 60 घण्टे अथवा उससे अधिक समय तक बोले गये शब्दों की झड़ी कोई साधारण बात नहीं थी। मुझे अच्छी तरह याद है कि उनकी तैयारी प्रतिवेदन तैयार करने में मेरे लिए बहुत सहायक सिद्ध हुई। इस मुकदमें में मुझे समय का पता सूर्य के उदय होने तथा अस्त होने से ही चलता था। तथापि, वकील के परिश्रम के बावजूद प्रशासन मुकदमा हार गया।

पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव विधि जगत में तथा अजमेर-मारवाड़ से संसद सदस्य के रूप में सदा याद किये जाते रहेंगे।

8

स्वर्गीय पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव—एक प्रबुद्ध व्यक्ति और वकील-समुदाय के निर्विवाद नेता

—सी॰एन॰ शर्मा॰

मैं स्वर्गीय पंडित मुकुट बिहारी लाल जी भार्गव को राजस्थान उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन के वरिष्ठ सदस्य के नाते 20 वर्षों से अधिक समय से जानता हूं और इस संबंध में मुझे विलियम फाल्कनर की एक बात याद आती है जो उन्होंने 40 वर्ष पूर्व नोबल पुरस्कार स्वीकार करते समय अपने भाषण में कही थी। विलियम फाल्कनर ने कहा था कि मनुष्य केवल बर्दाश्त नहीं करेगा, वह हावी होगा। मनुष्य अमर प्राणी है, इसलिए नहीं कि अन्य प्राणियों में अकेला वही है जिसके पास अथक वाणी है बल्कि इसलिये कि उसके पास आत्मा है और दया, बलिदान और सहनशीलता की भावना है।

वकील समुदाय के सदस्य और उनके अन्य सहयोगी, जो श्री मुकुट बिहारी लाल भार्गव की विविध गतिविधियों से सम्बद्ध रहे हैं, इस बात से सहज सहमत होंगे कि उनके पास अथक वाणी ही नहीं थी बल्कि उनको परमात्मा ने विनम्रता, दया, बलिदान की भावना और अनुपम सहनशीलता के गुण भी दिये थे जो उनके जीवन के प्रत्येक कार्यकलाप में स्पष्ट परिलक्षित होते थे।

वकालत के 50 वर्ष पूरा कर लेने के अवसर पर श्री भार्गव का अभिनन्दन करते हुए मैंने जो कुछ कहा था, उसको मैं आज फिर दोहराना चाहता हूं। मैंने उस समय कहा था कि जब मैं श्री भार्गव के बारे में सोचता हूं तो मुझे प्रसन्नता होती है कि कभी-कभी अपवाद होना कितनी शान की बात होती है। आज विश्व में भौतिकवाद का बोलबाला है और प्रत्येक व्यक्ति आपको आप न बना कर कुछ और बनाने हेतु दिन-रात परिश्रम कर रहा है, ऐसी अवस्था में श्री भार्गव जैसे कुछ व्यक्तियों को देखकर बहुत प्रसन्नता होती है जो अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए दूसरों की रक्षा करते हैं। आजकल

---

*वरिष्ठ वकील, राजस्थान उच्च न्यायालय और राजस्थान बार काउंसिल के पूर्व चेयरमैन।

अधिकांश लोग दूसरे का अनुग्रह और विशेषाधिकार चाहते हैं। परन्तु मैं निश्चित रूप से जानता हूं कि श्री भार्गव में ऐसी कोई कमजोरी नहीं थी। श्री भार्गव द्वारा इस प्रकार का असामान्य मार्ग चुने जाने का कारण यह था कि उन्होंने जीवन के वास्तविक प्रयोजन और उद्देश्य को समझ लिया था। वह समझ गये थे कि मनुष्य की महान उपलब्धि यही है कि उसे एक सीमा के भीतर रहना चाहिए, शेष सभी वस्तुएं, भौतिक उपलब्धियां और जनता की वाह-वाही निर्थरक हैं।

स्वर्गीय श्री मुकुट बिहारी लाल भार्गव ने वकालत का व्यवसाय अपनाने वाले युवा साथियों के लिए एक संदेश दिया था। उन्होंने युवा साथियों को सचेत किया था कि वे वकालत के व्यवसाय को स्वचालित मशीन न समझें। वकालत के व्यवसाय के बारे में उनके अनुभव के अनुसार किसी भी व्यक्ति के लिए कम से कम परिश्रम करके अधिक से अधिक धन अर्जित करने की अपेक्षा करना उचित नहीं है। उनके अनुसार वकालत के व्यवसाय को ठोस निवेश के रूप में समझा जाना चाहिए और इस में कोई व्यक्ति जितना परिश्रम करेगा उतना ही अर्जित कर पायेगा। श्री भार्गव ने अपने कनिष्ठ सहयोगियों को स्मरण कराया कि यह भौतिकी के एक लोकप्रिय सिद्धान्त की तरह है जिसका अर्थ यह है कि आप एक दिशा में जितनी शक्ति लगाओगे दूसरी दिशा से उतने ही जोर से वह पीछे आयेगी। इसी प्रकार वकालत के व्यवसाय में जितने अधिक परिश्रम व लगन से काम किया जायेगा उतना ही अधिक लाभ प्राप्त होगा। वास्तविक सफलता पाने के लिए कोई छोटा रास्ता नहीं है। श्री मुकुट बिहारी लाल ने सचेत किया कि जो दिन की समाप्ति पर निराशा महसूस करने लगते हैं, उनको ऐसी स्थिति के लिये स्वयं को जिम्मेदार मानना चाहिए। अतिमानव जैसी किसी वस्तु का कोई अस्तित्व नहीं है। व्यक्ति जितना कर सकता है, उतना उसको करना चाहिए। असम्भव लक्ष्य निर्धारित करने का कोई लाभ नहीं होता। वकालत के व्यवसाय के संबंध में ऐसी समझदारी और अभ्यास के कारण ही श्री भार्गव इस व्यवसाय के शिखर तक ही नहीं पहुंचे बल्कि वह अधिक प्रसन्नचित रहते थे और विवेकशील भी थे।

स्वर्गीय श्री भार्गव में सादगी, कुलीनता, प्रतिभा और हठकारिता का विचित्र मिश्रण था। मैंने अन्तिम शब्द का प्रयोग बहुत सोच-विचार कर किया है। उनका धैर्य अगाध था शायद यह अन्तिम विशेषता उनको सहज ही प्राप्त थी। जैसे आप कोई ऐसा उपाय नहीं कर सकते जिससे सूर्य का उदय जल्दी हो या ज्वार भाटे का प्रवाह बदल जाये वैसे ही

आप भी भार्गव को किसी काम में जल्दबाजी करने के लिए उत्तेजित नहीं कर सकते थे। हम सब जानते हैं कि सफलता प्राप्ति के अनेक कारण हैं। सफलता प्राप्ति के लिए मुख्य गुण है धैर्य और साहस। निश्चय ही ये गुण वह बुनियाद है जिस पर श्री भार्गव की हैसियत और जीवन का निर्माण हुआ था। श्री भार्गव में इतनी समझ थी कि अधिक शिक्षा प्राप्त कर लेने का इतना महत्व नहीं जितना कि उसकी व्यापकता का होता है और किसी व्यक्ति का जीवन-काल अधिक होने का इतना महत्व नहीं जितना उसके गाम्भीर्य का होता है। श्री भार्गव ने अपने जीवन के आरम्भ में ही समझ लिया था कि प्रसन्नता और सफलता उद्यम करते रहने से ही प्राप्त हो सकती है। वह इस लोकप्रिय कहावत के महत्व को समझते थे कि चीनी से चाय मीठी नहीं होती बल्कि उसको हिलाने से होती है।

मुझे कई बार हैरानगी होती है कि श्री भार्गव के इतने प्रभावशाली होने का कारण क्या था और मैंने महसूस किया कि उनके प्रभावशाली होने का कारण उनका परिश्रम, दृढ़ निश्चय, उनके मन में अन्य व्यक्तियों के लिये आदर और प्रेम और उनकी कम बोलने तथा अधिक सुनने की प्रवृत्ति थी। श्री भार्गव के जीवन काल में मानवीय आचरण और व्यवहार का यह क्षेत्र वकीलों की भावी पीढ़ी के लिये एक मुख्य केन्द्र बन गया। यदि इस व्यवसाय से संबंधित अथवा अन्य लोग उनके गुणों को अपनाएंगे तो निश्चय ही वे महान और अधिक बुद्धिमान बन जायेंगे।

शायद अधिकांश लोग जानते हैं कि स्वर्गीय श्री भार्गव द्वारा ब्रिटिश शासन से स्वाधीनता पाने के लिये राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाये जाने के फलस्वरूप कारावास में उनकी नज़र पूरी तरह जाती रही। ऐसी स्थिति में अधिकांश लोगों का मनोबल टूट सकता था तथा वे घुटने टेक देते परन्तु श्री भार्गव के मामले में ऐसा कुछ नहीं हुआ। इसके विपरीत वह न केवल स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भाग लेते रहे बल्कि वकालत के कष्टप्रद तथा थका देने वाले व्यवसाय में भी कल्पनातीत ऊंचाई प्राप्त की। श्री भार्गव को सम्भवतः बिलीग्राहम के इस विश्वास से प्रेरणा मिली थी कि धैर्य का गुण किसी के सम्पर्क से प्राप्त होता है। जब कोई वीर पुरूष दृढ़ निश्चय कर लेता है तो अन्य व्यक्तियों के मेरूदंड भी सीधे हो जाते हैं। उन्होंने ओलिवर वैंडल होमस के विधान से भी सीखा होगा कि इस विश्व में महानता इस बात की उतनी नहीं है कि हम कहां खड़े हैं बल्कि उसमें है कि हम किस दिशा में जा रहे हैं। श्री भार्गव को अपने अन्दर से प्रेरणा मिलती थी, जिससे वह अपने लिये सही मार्ग चुनने में समर्थ थे। स्वर्गीय श्री भार्गव को पूरा विश्वास था कि यह सोचना उचित नहीं कि यह विश्व दुर्बल और बलवान में अथवा सफलताओं और असफलताओं के बीच बंटा हुआ है। उनका विश्वास था कि यह विश्व सीखने वालों और न सीखने वालों में बंटा हुआ है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो सीखते हैं, जो जागरूक हैं और देखते हैं कि उनके आसपास क्या हो रहा है, जो शिक्षा पर ध्यान देते

हैं और यदि उनसे कोई गलत काम हो जाता है तो वे उसे दोबारा नहीं करते। और जब वे कोई ऐसा काम करते हैं जिससे कुछ उपलब्धि होती है तो वह अगली बार उसमें अधिक मेहनत करके आगे सुधार करते हैं। श्री भार्गव ने ठीक ही सोचा था कि प्रश्न यह नहीं पूछा जाना चाहिये कि कोई व्यक्ति सफल हुआ है या असफल बल्कि यह पूछा जाना चाहिये कि क्या वह सीखने वाला है या नहीं। स्वर्गीय श्री भार्गव की जीवन के ध्येय के प्रति सूझबूझ से पता चलता है कि उन्होंने निर्मल बुद्धिमत्ता से सही स्थिति पर विचार किया था और जीवन की मूल बातों को समझा था। श्री भार्गव ने गोयथे के इस विचार को अपनाया था कि हम जिस बात को समझते नहीं, हम उसको पाते भी नहीं।

श्री भार्गव के जीवन में हंसी मजाक का कदापि अभाव नहीं था। वह हाजिर जवाब थे और हंसी-मजाक भी करते रहते थे। एक बार मैंने उनसे पूछा कि काम के इतने बोझ के बावजूद और प्रायः आत्म निरीक्षण की अवस्था में रहने के बावजूद उनकी खुश मिजाजी का कारण क्या है तो वह हंस कर बोले कि जो उन्होंने मंदिर में खोया है उसको वह कभी-कभी मदिरालय में खोजने का प्रयास करते हैं।

निष्कर्ष यह है कि श्री भार्गव निश्चय ही एक प्रबुद्ध व्यक्ति और वकील समुदाय के निर्विवाद नेता थे।

भाग-तीन

संसद में दिये गये चुनिन्दा भाषण

हिन्दू कोड बिल के संबंध में*

अध्यक्ष महोदय, हम कल से हिन्दू कोड बिल पर चर्चा कर रहे हैं। हमने इस पर फरवरी में भी चर्चा की थी। इस विधेयक, जो निश्चय ही बहुत विवादास्पद प्रकार का है और जिससे हिन्दू समाज का ढांचा तहस-नहस हो जायेगा, के गुण-दोष पर चर्चा आरम्भ करने से पूर्व, सरकार द्वारा इतने महत्वपूर्ण विधेयक को जिस तरह यहां लाया गया है, मैं उसका ज़ोरदार शब्दों में विरोध करता हूं क्योंकि यह हिन्दू समाज के लिये जीवन और मृत्यु का प्रश्न है। यह सर्वविदित है कि इस विधेयक को लगभग अन्तिम दिन अर्थात् 9 अप्रैल, 1948 को पास कराने का प्रयास किया गया था जबकि इस पर उतनी चर्चा भी नहीं हो पाई थी जितनी कि एक साधारण विधेयक पर आम तौर पर की जाती है। फिर सरकार बजट सत्र में समय की कमी का तर्क देकर इस मामले पर ठोस चर्चा कराने के बजाय इसको जल्दी-जल्दी पास कराना चाहती है। मैं बड़े आदर से और विनम्रतापूर्वक यह पूछना चाहता हूं कि जबसे इस संविधान सभा का गठन हुआ है क्या कोई और ऐसा महत्वपूर्ण विधेयक इस सभा में इस तरह लाकर जल्दी में पारित कराया गया है। तथापि यह निर्णय करना सरकार का काम है और मैं सरकार को चेतावनी देना अपना कर्तव्य समझता हूं कि उनको इस बात पर विचार करना चाहिए कि इस मामले में इतनी जल्दी करने की क्या आवश्यकता है जबकि अनेक अत्यन्त महत्वपूर्ण और तात्कालिक विधेयक सभा के समक्ष हैं उन्हें छोड़कर इस विधेयक को शीघ्र पास करने की आवश्यकता क्या है? मैं पूछना चाहता हूं कि यदि शताब्दियों के विदेशी आक्रमण और विदेशी शासन के अत्याचारों को हिन्दू समाज बर्दाश्त कर सकता है तो इस व्यवस्था के न होने से हिन्दू समाज का क्या बिगड़ जायेगा? यदि यह कानून नहीं बनाया जायेगा तो क्या हिन्दू समाज का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा? महोदय, मैं निवेदन करना चाहता हूं कि इस असाधारण जल्दबाज़ी का कारण यह है कि मेरे माननीय मित्र, विधि मंत्री को विश्वास है कि हिन्दुओं

*भारत की संविधान सभा (विधायी) वाद विवाद 2 अप्रैल, 1949 पृष्ठ 2276-2289

का जनमत इस व्यवस्था का समर्थन करता है जिसका संकेत मेरे विद्वान मित्र श्री नजीरूद्दीन अहमद ने दिया था। महोदय, मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि जनमत इस व्यवस्था के विरुद्ध है। यह पता लगाने की कसौटी क्या है कि जनमत इस व्यवस्था के पक्ष में है या इसके विरुद्ध है? मेरे विचार से इसकी एक ही कसौटी हो सकती है, जिसका रिकार्ड हमारे पास है, और वह है व्यक्त की गयी राय। मैं विनम्रतापूर्वक कहना चाहता हूं कि राव समिति ने जिस राय का उल्लेख किया है वह इस विधेयक की प्रत्येक धारा के विरुद्ध है। अतः महोदय, इस सम्बन्ध में नयी राय लिये बिना विधि मंत्री सहित किसी भी व्यक्ति का यह दावा करना दुःसाहस ही माना जायेगा कि देश का जनमत इस व्यवस्था के पक्ष में है।

प्रश्न यह है कि हिन्दू कानून के संहिताकरण की आवश्यकता और उपयोगिता क्या है? हिन्दू कानून के संहिताकरण की मांग किस ने की है? हम जानते हैं कि केवल दो स्थितियों में संहिताकरण की आवश्यकता होती है—यदि किसी खास मुद्दे पर न्याय सम्बंधी गम्भीर मतभेद हों तब विधान मंडल के लिये हस्तक्षेप करना आवश्यक हो जाता है और अस्पष्ट बात को स्पष्ट करना आवश्यक हो जाता है। यह तो हुई पहली स्थिति। दूसरी स्थिति यह होती है कि जनमत कानून में परिवर्तन करने की मांग करें। इन दो स्थितियों में ही हिन्दू कानून का संहिताकरण करने के प्रयास को उचित बताया जा सकता है। मैं निवेदन करना चाहता हूं कि इस मामले में इनमें से कोई भी स्थिति विद्यमान नहीं है। जहां तक हिन्दू कानून के मुख्य सिद्धांतों का संबंध है, मैं कह सकता हूं कि उनको भली-भांति समझा जाता है और उनके बारे में किसी को कोई संदेह नहीं है। हिन्दू कानून के प्रमुख सिद्धांत स्मृतियों और निबन्धों से लिये गये हैं और भारत में न्यायालयों द्वारा उनकी अन्तिम रूप से व्याख्या की गयी है और अर्थ निकाला गया है और हिन्दू कानून की पाठ्य पुस्तकों में इन्हें प्रकाशित किया गया है। इससे स्पष्ट है कि हिन्दू कानून के प्रत्येक पेचीदा मसले पर स्पष्ट व्याख्या की गयी है। विधि मंत्री ने इस विधेयक को विचारार्थ पेश करते हुए अपने भाषण में कहा था कि हिन्दू समाज अथवा संयुक्त परिवार की विशेषतायें जैसा कि हिन्दू कानून में मूल संकल्पना की गई थी, न्यायिक फैसलों द्वारा छिन्न-भिन्न हो गयी हैं। परन्तु क्या यह बात संहिताकरण के लिए औचित्य प्रदान करती है? प्रिवी कौंसिल और उच्च न्यायालयों की न्यायिक राय से अब सिद्धान्त निर्धारित कर दिये गये हैं जिन के बारे में इस स्तर पर अब कोई संदेह नहीं कर सकता। चाहे संयुक्त हिन्दू परिवार के कर्ता अथवा प्रबन्धक, यदि किसी मामले में वह पिता नहीं है, की शक्तियों की बात हो या संयुक्त हिन्दू परिवार में पिता के रूप में प्रबन्धक की शक्तियों और कृत्यों की बात हो, उसके अधिकारों व शक्तियों को हिन्दू कानून में स्पष्ट परिभाषित किया गया है। उस पावन दायित्व के विवादग्रस्त सिद्धांत का भी जो विभिन्न उच्च न्यायालयों और प्रिवी

कौंसिल के बीच कुछ समय तक गंभीर विवाद का विषय बना रहा था, समाधान हो चुका है और हम जानते है कि पुत्र के क्या कर्तव्य हैं और उसके पिता द्वारा प्राप्त ऋण के लिये उसकी देयता की सीमा कितनी है। इसी प्रकार विवाह, आदि के मामले में हिन्दू कानून बिल्कुल स्पष्ट है। अब प्रश्न यह है कि क्या देश में कोई ऐसी राय व्यक्त की गयी है या बहुत अधिक लोगों ने मांग की है जिसके कारण सरकार को हिन्दू कानून का संहिताकरण करने की आवश्यकता पड़ी है। मेरा सविनय निवेदन है कि ऐसी कोई बात है ही नहीं और हिन्दू कानून के संहिताकरण के इस प्रयास का कोई औचित्य नहीं है।

जहां तक संहिताकरण के इतिहास का संबंध है, यह प्रयास पहली बार नहीं किया जा रहा। मैं सभा का ध्यान अंग्रेजों के शासन के दौरान हिन्दू कानून का संहिताकरण करने के लिये किये गये विभिन्न प्रयासों की ओर दिलाना चाहता हूं और निवेदन करना चाहता हूं कि ऐसे प्रत्येक अवसर पर बहुत ठोस और युक्तिसंगत कारणों से मामले को स्थगित कर दिया गया। सन् 1833 में रायल चार्टर द्वारा एक आयोग नियुक्त किया गया था। सन् 1853 में एक विधि आयोग नियुक्त किया गया था। इन आयोगों के प्रतिवेदन सन् 1856 में प्रकाशित हुए जिनमें हिन्दू कानून के संहिताकरण संबंधी प्रस्ताव को इस आधार पर नामंजूर कर दिया गया था कि यह प्रयास निरर्थक होगा और इससे हिन्दू कानून का विकास रूक जायेगा। इसी प्रकार सन् 1861 में और फिर 1921 में, पहले मामले में भारत के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट की मंजूरी ले कर विधि आयोग नियुक्त किया गया था। संहिताकरण के विषय पर उनका निर्णय विधि आयोगों के निष्कर्षों के समान ही था। 23 मार्च, 1921 को इस सभा के एक प्रतिष्ठित सदस्य ने हिन्दू कानून के संहिताकरण के लिये एक आयोग नियुक्त करने हेतु एक गैर-सरकारी संकल्प सभा में रखा था। जब उस प्रस्ताव पर सभा में चर्चा की गयी तो उस समय विधि विभाग हिन्दू कानून पर एक बहुत ही विद्वान और सुप्रसिद्ध विधिवेत्ता के अधीन था। मेरा अभिप्राय डा० तेज बहादुर सप्रू से है। उस प्रस्ताव पर इस बात को लेकर गरमागरम बहस हुई कि क्या संहिताकरण आवश्यक है या नहीं अथवा ऐसा करना हिन्दू समाज के लिये अच्छा होगा या नहीं। मैं सभा का और माननीय विधि मंत्री का ध्यान सर तेज बहादुर सप्रू जो स्वयं हिन्दू कानून के विशेषज्ञ थे, द्वारा सरकार की ओर से दिये गये उत्तर की ओर दिलाना चाहता हूं। उन्होंने बताया कि कानून का, किसी समुदाय के निजी कानून का, संहिताकरण कोई सरल बात नहीं है और यह बहुत बड़ा काम है जिसमें विधि से सम्बन्धित सर्वाधिक प्रतिभावान व्यक्तियों को शताब्दियों तक अपनी शक्ति इस काम के लिये खर्च करनी पड़ेगी। उन्होंने सभा का ध्यान जर्मन संहिता की ओर दिलाया जिसका 1834 से 1896 तक अर्थात् 50 वर्षों की मेहनत के बाद मस्विदा तैयार किया गया और संहिताकरण किया गया और यह भी बताया कि संहिता का मस्विदा तैयार करने का काम तीन आयोगों ने किया। उन्होंने

बताया कि सन् 1896 से पहले तक जर्मन संहिता के अंतिम रूप को लिखित रूप में तैयार नहीं किया जा सका। जर्मनी के दो सुप्रसिद्ध विधिवेत्ताओं के बीच, जिसमें से एक पक्ष संहिताकरण के पक्ष में था और दूसरा उसके विरुद्ध था एक का सवोंप्रे और दूसरे का थेबाउत प्रतिनिधित्व कर रहे थे और उसमें भी उनको 4 वर्ष लग गये। इस प्रकार सन् 1900 में जाकर लगभग 50 वर्ष के निरन्तर परिश्रम के बाद संहिता का मस्विदा तैयार हुआ जिसको इम्पीरियल जर्मन सरकार ने स्वीकृति दी। महोदय, इसी प्रकार यूरोप के महाद्वीप में स्विस संहिता तथा अन्य संहिताएं देश के विधि संबंधी सर्वोपरि प्रतिभावान व्यक्तियों के अनेक वर्षों के निरन्तर परिश्रम के बाद तैयार हो पाई। आप उन देशों के राज्य क्षेत्रों और स्थितियों की तुलना भारत की स्थितियों से करें। भारत के प्राचीन इतिहास तथा विधान की विभिन्न शाखाओं पर ध्यान दें जो प्राचीन समय से वर्तमान तक हिन्दू कानून के विकास के साथ जुड़ी हुई हैं। मैं निवेदन करना चाहता हूं कि हिन्दू कानून के संहिताकरण का प्रयास निरर्थक सिद्ध होगा। हिन्दुओं के वैयक्तिक कानूनों के संहिताकरण का प्रयास सफल नहीं होगा, मैं आदरपूर्वक पूछना चाहता हूं कि इस विधान का स्रोत क्या है? स्पष्टतः किसी मानव ने किया नहीं और वह इस लिये कि किसी मानव शक्ति ने हिन्दू कानून की रचना करने का कभी प्रयास नहीं किया। इस कानून को किसी सार्वभौम सत्ता ने स्वीकृति नहीं दी बल्कि इसे ज्ञान की नैतिक मंजूरी है और यह ऋषियों की साधना का परिणाम है। इसके मूल का पता लगाना कठिन है; स्मृतिकार 138 थे जैसा कि कहा जाता है—कानून बनाने के पक्ष में नहीं थे। ऋषियों ने स्मृतियों और वेदों को अपना आधार बनाया था और हम सब जानते हैं कि ऋग्वेद विश्व में सब से प्राचीन ग्रन्थ है। दो महान लेखकों विगनेश्वर और जीमूत वाहन भी जो दो प्रमुख प्रबन्धों के लेखक थे, जिनकी भारत में बहुत मान्यता थी, उन्होंने भी हिन्दू कानून के संहिताकरण का प्रयास नहीं किया अथवा समाज के लिये कोई नया कानून नहीं बनाया। उन्होंने केवल स्मृतियों पर भाष्य लिखे। अंग्रेजों और मुसलमानों के वर्षों तक चले शासन काल में भी हिन्दू कानून के लोकप्रिय सिद्धांतों की व्याख्या मात्र ही की गयी है। अब कानून के संहिताकरण की क्या आवश्यकता आ पड़ी है? यदि जर्मन और स्विस राष्ट्रों को—जो भारत की तुलना में बहुत छोटे हैं—अपने संबंधों की व्यवस्था करने हेतु संतोषजनक संहिता तैयार करने में 50 या 60 वर्ष लग गये, तो हमें भारत में, जहां हिन्दू कानून का मूल और स्रोत रहस्यमय है, विधान के संहिताकरण का प्रयास करने की क्या आवश्यकता है? हमें बताया गया है कि इस देश में विभिन्नताओं में एकरूपता लाने के लिये ऐसा किया जा रहा है और इसका दूसरा कारण यह बताया गया है कि हिन्दू समाज में युगों से पुरूषों द्वारा महिलाओं का दमन किया जाता रहा है और उन पर अत्याचार किये जाते रहे हैं

जिससे उनको छुटकारा दिलाना है। जहां तक एकरूपता लाने का संबंध है, मैं निवेदन करना चाहता हूं कि जितनी एकरूपता वर्तमान में है इससे अधिक नहीं लायी जा सकती।

उत्तराधिकार के कानून के संबंध में भी, जहां प्रथानुसार ज्येष्ठाधिकार का नियम प्रचलित है अथवा अनुदान अथवा पुरस्कार में सम्पत्ति मिली हो उसके बारे में उन्होंने कहा है कि इस अधिनियम में निर्धारित किए गए उत्तराधिकार के नियम उपर्युक्त पर लागू नहीं होंगे। इसी प्रकार खंड 7 में यद्यपि सपिंडों के बीच विवाह की मनाही की गयी है, फिर भी कहा गया है कि यह स्थानीय प्रथा पर निर्भर करता है, इसलिये जहां यह प्रथा प्रचलित है वहां इसकी अनुमति रहेगी। इसलिए एकरूपता का जो भूत इस विधेयक के लेखक को परेशान कर रहा है, वह करता रहेगा और महिलाओं की दासता से तथाकथित मुक्ति का कोई परिणाम नहीं निकलेगा। मैं निवेदन करना चाहता हूं कि जो व्यक्ति हिन्दू विधान और हिन्दू समाज में महिलाओं के स्थान के बारे में विचार करना चाहते हैं उनको पश्चिमी दृष्टिकोण से नहीं बल्कि हमारी अपनी सभ्यता को ध्यान में रख कर विचार करना चाहिए। हमें इस बात की जानकारी होनी चाहिए कि हमारे अपने विधान बनाने वालों ने इन अत्यंत कठिन और पेचीदा मसलों के बारे में क्या दृष्टिकोण अपनाया था। इन मसलों के संबंध में पूर्व और पश्चिम के देशों में प्रचलित विचार एक दूसरे से बिल्कुल मेल नहीं खाते। हमारा यह विश्वास है कि हमारे जीवन का संबंध भूतकाल से है और भावी जीवन से भी रहेगा और इसलिये हमारे विधान का आधार भी विशिष्ट होगा। इसलिये हमारे ऋषियों ने हमारा विधान बनाते समय इन मसलों पर समग्र हिन्दू समाज की हर प्रकार से भलाई को ध्यान में रखा। हमें भी उन आदर्शों पर ध्यान देना होगा जिनसे प्रेरित हो कर हमारे विधान निर्माताओं ने एक विशिष्ट तरीके से हमारे लिये नियम बनाये थे। जब तक हम ऐसा नहीं करते तब तक हम अपने विधान के महत्व को समझ नहीं सकते।

महोदय, यदि विधि मंत्री ईमानदारी से घोषणा कर देते कि इस अधिनियम के अपने गुणदोष हैं और इसे हिन्दू समाज के वर्तमान स्वरूप के बारे में उनके विचारों के अनुरूप तैयार किया गया है, तो मुझे बुरा नहीं लगता। परन्तु मुझे दुःख इस बात का है कि वह इस बात पर जोर देते हैं कि इस विधेयक के उपबन्ध हिन्दू विधान के स्वीकृत सिद्धान्तों के अनुसार हैं। यह सर्वविदित कथन है कि शैतान भी बाइबिल से उद्धृत कर सकता है। मैं निवेदन करता हूं कि इस विधेयक का प्रत्येक उपबन्ध चाहे वह विवाह से सम्बन्धित है या तलाक से, दत्तक-ग्रहण से अथवा उत्तराधिकार से—हिन्दू विधान के मूल सिद्धान्तों के विरुद्ध है और मेरे विचार से इसका परिणाम भी अच्छा नहीं होगा। वास्तव में हिन्दू समाज में प्रत्येक परिवार नरक बन जायेगा। जहां भाई-बहिन, पति-पत्नी, बच्चों और उनके पिता के बीच झगड़े होने लगेंगे। प्रस्तावित विधि से हिन्दू समाज की मूल विशेषताओं का कोई महत्व नहीं रह जायेगा, यह बहुत ही महत्वपूर्ण मामला है और इस सम्बन्ध में

जनमत संग्रह करवाया जाना चाहिए ताकि इस बात का पता लगाया जा सके कि लोक मत इस व्यवस्था के पक्ष में है या इसके विरुद्ध है।

मैंने निवेदन किया कि हिन्दू विधान के संहिताकरण की कोई आवश्यकता नहीं है। अब प्रश्न यह है कि क्या इस विधान के अधिनियम के बाद यदि इसको लागू किया जाये तो प्रस्तावित एकरूपता लाई जा सकेगी। सांविधिक विधि के बारे में हमारा अनुभव क्या है? भारत सरकार ने वर्ष 1923 में एक सिविल जस्टिस कमेटी नियुक्त की थी और उस समिति ने विभिन्न संविधियों का अध्ययन करके सिफारिश की थी कि सम्पत्ति अधिनियम, संविदा अधिनियम तथा साक्ष्य विधि में संशोधन किया जाना चाहिए और विधान मंडल को उनका पुनरीक्षण शीघ्र आरम्भ कर देना चाहिए। क्या विधान मंडल को इस काम के लिये समय मिला? इसका क्या परिणाम निकला? इसका परिणाम यह निकला है कि कानून उन्हीं उपबन्धों के अनुसार लागू किया जा रहा है जिनके बारे में स्वयं प्राधिकारियों की भी यही राय है कि जिस प्रयोजन के लिये इन्हें बनाया गया था उनकी उपयोगिता समाप्त हो चुकी है। यदि हिन्दू संहिता को कानूनी पुस्तक में सम्मिलित किया गया तो उसकी भी यही स्थिति होगी। यदि कठोर संहिता बनाई जाती है जिस पर लोगों के अधिकार निर्भर हों तो उसकी भी हालत वैसी ही होगी। हिन्दू विधान की जीवंतता समाप्त हो जायेगी; इसका लचीलापन, व्याप्त परिस्थितियों के अनुसार ढल जाने की क्षमता समाप्त हो जायेगी और इसमें अत्यधिक कठोरता आ जायेगी। क्या मैं पूछ सकता हूं कि हिन्दू विधि के संहिताकरण से विरोध कम करने और मतभेद दूर करने का उद्देश्य पूरा हो जायेगा? मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि ऐसा नहीं होगा और विभिन्न कानूनों के बारे में हमारा अनुभव मेरे निष्कर्ष की ही पुष्टि करता है।

* * * *

*मुझे आशा है कि मेरे मित्र में मेरे विचारों को सुनने का धैर्य है। हममें प्रतिकूल राय को सुन सकने की सहनशीलता होनी चाहिए, इतना धैर्य तो होना ही चाहिए। मेरा कहने का अभिप्राय यह था कि केवल कोई कानून बना कर एकरूपता नहीं लाई जा सकती और न ही मतभेदों का समाधान किया जा सकता है। इस हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, 1872 के उपबन्धों की व्याख्या और रचना में भी भिन्न-भिन्न मत हैं। धारा 2 की रचना के बारे में विभिन्न उच्च न्यायालयों के बीच गम्भीर मतभेद हैं। प्रश्न यह है कि क्या जिस महिला का पुनर्विवाह प्रचलित प्रथा के अनुसार होता है, उसका अधिकार उसके पति की सम्पत्ति में होगा? यह मुद्दा है, हमारे सामने इलाहाबाद हाई कोर्ट और अवध चीफ कोर्ट

---

*श्रीमती जी. दुर्गाबाई जिन्होंने पूछा था कि "क्या आप विधवा विवाह अधिनियम का भी विरोध करते हैं", की बात का उत्तर देते हुए कहा था।

की राय है—एक राय यह है कि केवल इसी कारण से कि उसने दोबारा विवाह कर लिया है उसका अपने पहले पति की सम्पत्ति में अधिकार समाप्त नहीं हो जाता जबकि हाई कोर्ट ने इससे भिन्न दृष्टिकोण अपनाया है। इसी प्रकार इस अधिनियम में "बहिन" जैसे सरल से शब्द को लेकर उसकी व्याख्या के संबंध में भारी मतभेद है। कुछ उच्च न्यायालयों का कहना है कि "बहिन" शब्द में "सौतेली बहिन" शामिल नहीं है, जबकि नागपुर प्रमुख न्यायालय इस शब्द पर ब्यौरेवार विचार करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि यह शामिल है। मेरा निवेदन यह है कि हिन्दू विधान की रचना में विद्यमान कठिनाइयां हिन्दू कोड बिल पास कर देने से समाप्त नहीं हो जायेंगी।

*** *** ***

मैं कहना चाहता हूं कि यदि यह विधेयक अधिनियम बन भी जाता है तब भी विरोध तो रहेगा क्योंकि उच्च न्यायालय विभिन्न उपबन्धों की व्याख्या भिन्न-भिन्न तरीके से कर सकता है।* हिन्दू विधान के संबंध में भिन्न-भिन्न राय और भिन्न-भिन्न मुद्दों का समाधान कभी नहीं होगा क्योंकि उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय किसी उपबन्ध विशेष की अपने ढंग से व्याख्या कर सकते हैं और जैसाकि हमें पहले विधान के अनुभव से पता चलता है, परस्पर विरोध चलता रहेगा। अतः मेरा सादर निवेदन है कि हिन्दू विधान के संहिताकरण का प्रयास निरर्थक है और इस संबंध में किये गये किसी भी प्रयास से हिन्दू विधान का लचीलापन और जीवंतता समाप्त हो जायेगी, जो किसी भी तरीके से वर्तमान परिस्थितियों में वांछनीय नहीं है।

मेरा अगला मुद्दा और भी महत्वपूर्ण है। वर्तमान विधान का मूल स्रोत क्या है और जिन परिस्थितियों में उसका प्रादुर्भाव हुआ था, क्या उस पर आगे विचार करना उचित है? मैं आदरपूर्वक आपका ध्यान इस बात की ओर दिलाना चाहता हूं कि वर्ष 1941 में एक हिन्दू विधान समिति नियुक्त की गई थी और इसने हिन्दू विधान का खंडवार संहिताकरण करने पर विचार किया और इस समिति ने दो विधेयक तैयार किये, एक विधेयक हिन्दुओं के निवर्सीयत उत्तराधिकार से संबंधित था और दूसरा विवाह से संबंधित विधान था। जब ये दो विधेयक विधान मंडल के समक्ष रखे गये, तो दोनों विधान मंडलों की संयुक्त बैठक हुई थी। उस समय हमारा विधान मंडल द्विपक्षीय स्वरूप का था और निर्णय किया गया कि इसे खण्डों में बनाने की बजाय एक हिन्दू विधान बनाया जाये तो बेहतर होगा और इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर वर्तमान राव समिति का गठन किया गया था।

---

*श्री एल० कृष्णास्वामी जिन्होंने पूछा था "क्या आपका अभिप्राय यह है कि विरोध जारी रहने दिया जाना चाहिए" का उत्तर देते हुए कहा।

अब, महोदय, जब एक महिला सदस्य ने सभा को सम्बोधित किया, निश्चय ही, वह इस विधान के पक्ष में बड़े जोश खरोश से बोली थी, तो उन्होंने कहा कि यह विधान वर्षों से संभवतः 10 वर्ष से समिति के विचाराधीन रहा और राव समिति ने हजारों गवाहों के साक्ष्य लिए थे और उसने देश के अनेक भागों का व्यापक दौरा किया था। मैं आदरपूर्वक कहना चाहता हूं कि महिला सदस्य द्वारा कही गई बात में सच्चाई का अंश बहुत थोड़ा है क्योंकि आप देखें कि समिति के पास कितने साक्ष्य थे और उन साक्ष्यों की थोड़ी सी मात्रा का वजन कितना था। राव समिति का गठन 20 जनवरी, 1944 को किया गया जिसने एक विधेयक का मसौदा तैयार किया जिसको कुछ चुनिंदा और प्रतिष्ठित वकीलों की राय जानने के लिये परिचालित किया गया था। उनकी राय प्राप्त हो जाने के पश्चात् समिति ने निर्णय किया कि उनके द्वारा तैयार किये गये मसौदे को पूरे देश में परिचालित किया जाये। उस विधेयक का विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनुवाद किया गया और लगभग 6,000 प्रतियां वितरित की गई, दिनांक 5 अगस्त, 1944 को राय मांगी गई थी और अन्तिम तिथि 31 दिसम्बर, 1944 निर्धारित की गई। राय प्राप्त हो जाने के बाद समिति ने देश का दौरा किया। मैं चाहता हूं कि सभा इस बात पर ध्यान दे कि उनका दौरा कितना व्यापक था। उन्होंने प्रान्तों के प्रमुख कस्बों और शहरों का दौरा किया और जहां तक मुझे याद है उनकी संख्या एक दर्जन से अधिक नहीं थी। इस समिति ने इलाहाबाद, मुम्बई, कलकत्ता, पूना, पटना, लाहौर और अन्य शहरों का ही दौरा किया था। यही समिति के दौरे की व्यापकता थी। देश की कुल जनसंख्या की तुलना में इन कुछ प्रमुख कस्बों और नगरों की जनसंख्या कितनी होगी? क्या इन शहरों में गवाहों की पूछताछ के लिए इस समिति द्वारा किये गये दौरे से इस विधेयक के सम्बन्ध में देश की वास्तविक भावना का संकेत मिल सकता है?

अब आप देखें कि कितने गवाहों से पूछताछ की गई। कुल 122 गवाहों और 201 ऐसोसिएशनों का प्रतिनिधित्व करते हुए 257 लोगों ने साक्ष्य दिये थे। कुल साक्ष्य की यही स्थिति थी। क्या मैं इसके बारे में एक प्रश्न पूछ सकता हूं? क्या इस देश की व्यापकता को ध्यान में रखते हुए इसको किसी भी प्रकार से पर्याप्त साक्ष्य समझा जा सकता है? वास्तविक भारत, वास्तविक हिन्दू शहरों में नहीं बल्कि गांवों में रहता है, वह किसानों के रूप में है जो जनसंख्या का 90 प्रतिशत है। क्या किसी भी पैमाने से, इस समिति ने जितने गवाहों से पूछताछ की, उसे पर्याप्त कहा जा सकता है और उसे देश की व्यापकता के अनुरूप बताया जा सकता है, जबकि विभिन्न प्रान्तों में बिल्कुल भिन्न-भिन्न राय है? मैं आदरपूर्वक निवेदन करता हूं कि यह पर्याप्त नहीं है।

अब हम साक्ष्य के परिणाम का आगे विश्लेषण करते हैं। मेरा निवेदन यह है कि प्रत्येक मूल मुद्दे पर, जो वर्तमान संहिता का आधार है, राय मुख्य तौर पर कोई परिवर्तन न करने के पक्ष में थी। बहुत लोगों का यही मत था। उदाहरण के लिये आप एक मूल

विचार पर ध्यान दें जो इस विधान के पूरे पाठ में प्रतिपादित किया गया है—पुत्रों, पुत्रियों, विधवाओं आदि को एक साथ उत्तराधिकार।

*** *** ***

पुत्र के साथ-साथ पुत्री के उत्तराधिकार की व्यवस्था के पक्ष में 78 और इसके विपक्ष में 215 गवाह थे। महिला के रूप में विधवा की सीमित सम्पत्ति को पूर्ण सम्पत्ति में बदलने की व्यवस्था के पक्ष में 49 और विपक्ष में 107 लोगों ने साक्ष्य दिये। तलाक के पक्ष में 112 और विपक्ष में 119 गवाह थे। दत्तकग्रहण और अन्य प्रस्तावित परिवर्तनों के पक्ष में 36 और विपक्ष में 38 गवाह थे। अन्य मुद्दों पर भी परिवर्तन के विरुद्ध साक्ष्य देने वालों की संख्या बहुत अधिक थी। अतः मैं पूछना चाहता हूं कि इस विधान पर आगे चर्चा करने का क्या औचित्य है?

*** *** ***

मैं इस संबंध में भी उचित समय आने पर बात करूंगा*। मेरा निवेदन है कि यदि यह लोकतंत्रीय विधान मंडल है, यदि यह विधानमंडल इस बात का दावा करता है कि वह देश में भारी जनमत की इच्छानुसार कानून बनायेगा तो एक ही रास्ता है कि इस विधेयक को स्वीकार न किया जाये क्योंकि देश में जनमत ने स्पष्ट कर दिया है कि वे प्रस्तावित व्यवस्था के विरुद्ध हैं। मुझे खेद है कि मेरे पास इस समय वह समाचार पत्र नहीं है जिसमें विधि मंत्री द्वारा दी गई राय प्रकाशित की गई थी। यह बात इस विधेयक पर चर्चा करने से कुछ समय पहले सम्भवतः फरवरी मास की है कि उन्होंने अपने पक्ष में साक्ष्य की या संख्या की दृष्टि से जनमत की बात न करके इस विधेयक की गुणवत्ता को आधार बनाया था। विधि मंत्री ने स्वयं एक तरीके से इस बात को स्वीकार किया था कि संख्या की दृष्टि से लोकमत उनके विरुद्ध है। यह सच है कि कुछ व्यक्ति, वे चाहे जितने भी प्रतिष्ठित हों, इस विधान को देश पर थोपना चाहते हैं, इसको स्वीकार नहीं किया जा सकता है। लोकमत की एकमात्र कसौटी है, राव समिति द्वारा एकत्र किया गया लोकमत। निश्चय ही लोकमत जानने की और कोई कसौटी नहीं है, जिसके आधार पर सभा का कोई सदस्य कह सके कि लोकमत इस विधान के पक्ष में है और इसके विरुद्ध नहीं है। इसी प्रकार के अभ्यावेदन हमें विभिन्न संस्थाओं से प्राप्त हो रहे हैं.....

*** *** ***

---

*श्रीमती जी. दुर्गाबाई, जिन्होंने पूछा था, "एक विवाह-प्रथा के बारे में उनके क्या विचार हैं?" का उत्तर देते हुए कहा।

विभिन्न विशिष्ट उच्च न्यायालयों और सिविल न्यायाधीशों से और वकीलों की एसोसिएशनों से भी अभ्यावेदन प्राप्त हो रहे हैं। जहां तक मैंने लोगों द्वारा दी गई राय का अध्ययन किया है, मैंने पाया है कि बहुत कम लोग इस विधान के अधिनियमन के पक्ष में हैं और ज्यादातर लोगों की राय इसके विरूद्ध है।

मेरा अगला मुद्दा यह है यदि यह मान भी लिया जाये कि अब तक का लोकमत निश्चयात्मक नहीं है, वर्तमान विधानमंडल में इस विधान को पास करने की क्या आवश्यकता है? जैसाकि पहले बताया जा चुका है और मैं उन तर्कों को दोहराना नहीं चाहता परन्तु मैं आदरपूर्वक कहना चाहता हूं कि वर्तमान विधानमंडल का काम संविधान बनाने का है और तात्कालिक विषयों पर, जिनके संबंध में कानून बनाना अत्यन्त आवश्यक है, विधान बनाने का है। किसी भी दृष्टि से इस बात पर जोर नहीं दिया जा सकता है कि सरकार हिन्दू कोड बिल को इसलिये नहीं लाये कि यह एक ऐसा विधान है, जिसके विरूद्ध जनमत है।

अब मैं इस विधान में निहित विभिन्न उपबन्धों की जांच के संबंध में कुछ कहना चाहूंगा। जैसाकि मैंने कहा था और मैं ईमानदारी के साथ महसूस करता हूं कि इन उपबन्धों की मूलभूत बातें, जो इस विधान में सम्मिलित हैं, हमारे ऋषियों द्वारा परिकल्पित हिन्दू समाज के अस्तित्व के लिये घातक हैं। इसलिए मेरा कष्ट साध्य कर्तव्य इस विधेयक के एक-एक उपबन्ध का पुरजोर विरोध करना है। प्रश्न यह है कि इस विधान के माध्यम से हिन्दू समाज में क्या मूल परिवर्तन लाने का प्रस्ताव है और वे प्रस्तावित परिवर्तन हिन्दू विचारधारा और हिन्दू आदर्शों के कहां तक अनुरूप हैं। मेरा विनम्र निवेदन यह है कि इस हिन्दू कोड को हिन्दू कोड न कह कर इस्लामिक कोड कहना ठीक रहेगा।

*** *** ***

निःसंदेह यह टिप्पणी मुझ पर लागू नहीं होती।* मेरी भी वही भावना है जैसाकि हमारे विद्वान सदस्य की। महोदय, इस विधान के दूसरे भाग में विवाह और तलाक शीर्ष के अधीन मुख्य मुद्दा उठाया गया है। खंड 5 से 51 तक इनका उल्लेख किया गया है। अब देखना यह है कि विधेयक के इन उपबन्धों में परिकल्पित विवाह पद्धति विवाह की हिन्दू संकल्पना से कहां तक मेल खाती है। मेरा विनम्र निवेदन है कि इस विधेयक के खंड 7 में उपबन्धित धार्मिक संस्कारों के अनुरूप विवाह की धूमधाम हिन्दू विवाह की संकल्पना और आदर्श से बिल्कुल भिन्न प्रकार की है। जिस प्रकार के विवाह की परिकल्पना की गयी है, वह वास्तविकता को छिपाने का आवरण मात्र है। अन्यथा खंड 10 और खंड 21 में उल्लिखित उपबंध इस विधेयक में न रखे जाते। हिन्दुओं में इस बारे में कोई विवाद नहीं—इस विषय पर कोई दो राय नहीं है। निःसन्देह, यदि हमारा उद्देश्य हिन्दू आदर्शों और विचारधाराओं को चुनौती देना है, यदि हम उनका परित्याग

---

* श्री ए० करुणाकरण मेनन का उत्तर देते हुए जिन्होंने कहा था—

"इसीलिए हमारे मित्र श्री नजीरुद्दीन अहमद इसका विरोध कर रहे हैं।"

करना चाहते हैं तो फिर यह अलग बात है। हिन्दुओं के लिये विवाह धार्मिक संस्कारों के अनुरूप किया गया कर्म है और इसलिये वह चिरस्थायी है। वह पति-पत्नी के बीच एकता का धार्मिक बंधन है। यह कोई ऐसा मिलन नहीं जिसको किसी भी समय समाप्त किया जा सके। यह कोई संविदात्मक संबंध नहीं है। यह एक ऐसा संबंध है। जिसमें अध्यात्मिकता का पुट है। किसी भी पक्ष द्वारा मात्र अपनी इच्छा या अनिच्छा के आधार पर इस बंधन को तोड़ा नहीं जा सकता। हिन्दू विवाह की यह संकल्पना है। मैं ऐसी किसी भी स्मृति अथवा किसी धर्मपुस्तक के उद्धरण पर आपत्ति करूंगा, जहां तक किसी हिन्दू धर्मपुस्तक का संबंध है, जो धार्मिक संस्कारों के अनुरूप किये गये विवाह को नकार दे और किसी अन्य प्रकार के विवाह का प्रतिपादन करे जिसका उल्लेख स्मृति में हो। इसलिये में निवेदन करता हूं कि जहां तक खंड 10 में उल्लखित विवाह और तलाक अध्याय में सिविल विवाह संबंधी उपबन्ध की बात है। इसका हिन्दू विधान में कोई स्थान नहीं है। इसको प्रस्तुत विधेयक में नहीं रखा जाना चाहिए। वर्ष 1872 से, जब से 1872 का अधिनियम III लागू हुआ है, इस देश में सिविल विवाह का प्रचलन हुआ है। वर्ष 1929 में इसमें आगे संशोधन हुआ था। इस अधिनियम में उल्लिखित सिविल विवाह को जारी रखा जाना चाहिए। परन्तु हिन्दू संहिता में इसको सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए। मैं पूछना चाहता हूं कि हिन्दू संहिता में इसको क्यों सम्मिलित किया जाये। क्या यह किसी स्मृति के अनुरूप है? मैं यह प्रश्न इसलिए पूछता हूं कि आपका कहना है कि इस विधान में कोई क्रान्तिकारी अथवा आमूल परिवर्तन नहीं है और सब कुछ हिन्दू संकल्पना, विचारधारा और आदर्शों के अनुरूप है। यह दावा निरर्थक है और मुझे इसका निराकरण करना चाहिए। मैं कहना चाहता हूं कि इस विधेयक में खंड 10 के अंतर्गत रखे गये उपबन्ध का सम्मिलित किया जाना, जिसमें सिविल विवाह का उल्लेख है, हिन्दू आदर्शों के प्रतिकूल है, उसका उनमें कोई स्थान नहीं है। मैं पहले कह चुका हूं, कि इस प्रकार का धार्मिक संस्कारों के अनुरूप विवाह अन्य प्रकार के विवाह के लिये छल-आवरण मात्र है और यदि खंड 7, 10 और 21 के उपबन्धों का हवाला दिया जाता है तो इस संदर्भ में स्थिति बिल्कुल स्पष्ट है।

जहां तक खंड 7 का संबंध है, इसमें धार्मिक संस्कारों के अनुसार विवाह के लिये कुछ शर्तें रखी गयी हैं। इस संबंध में मैं सभा का ध्यान खंड 6 की ओर दिलाना चाहता हूं। इस में लिखा है कि यदि दोनों पक्ष सपिंड हैं तो यह उनकी इच्छा पर निर्भर करता है कि वह किस रीति से विवाह करना चाहते हैं। यदि हम खंड 10 पर ध्यान देते हैं जिसमें मान्य सिविल विवाह की शर्तों का उल्लेख है, तो इसमें खंड 7 के उपखंड 6 में उल्लिखित उपबंध का लोप कर दिया गया है और वहां खंड 7 के अन्य पांच उपखंड रहने दिये गये हैं। इस प्रकार यदि दोनों पक्ष सपिंड है तो उनका विवाह यदि वह खंड 10

के अधीन सिविल विवाह किया गया है, पूरी तरह मान्य है। धार्मिक संस्कारों के अनुरूप विवाह की मान्यता और सिविल विवाह की मान्यता के बीच यह अंतर है। खंड 21 में लिखा है कि खंड 7 में उल्लिखित प्रकार के धार्मिक संस्कारों के अनुरूप विवाह के बाद यदि संबंधित पक्ष चाहे तो वे पंजिकाधिकारी के पास जा सकते हैं और अपने विवाह को सिविल विवाह के रूप में पंजीयन करने के लिये उनको कह सकते हैं और पंजिकाधिकारी के पास और कोई विकल्प नहीं होगा। यदि इन तीनों उपबंधों को एक साथ पढ़ा जाये तो उसका कानूनी प्रभाव क्या होगा? धार्मिक संस्कारों के अनुरूप विवाह के साथ जो भी पवित्रता का तत्व जुड़ा है, वह समाप्त हो जायेगा इस बात का ध्यान रखा जाये कि धार्मिक संस्कारों के अनुरूप मान्य विवाह की एक अपेक्षित शर्त यह है कि विवाह सपिंडो के बीच नहीं होना चाहिए। यह शर्त खंड 10 में उल्लिखित नहीं है और बेचारे पंजिकाधिकारी को इसके बावजूद कि धार्मिक संस्कारों के अनुसार किया गया विवाह इस कारण मान्य नहीं था, सिविल विवाह के रूप में पंजीयन करना होगा। अतः धार्मिक संस्कारों के अनुरूप विवाह का छल-आवरण समाप्त हो जाता है, इस तरीके से अवैधता का प्रभाव भी समाप्त हो जाता है क्योंकि विवाह सपिंडो के बीच हुआ था। मैं पूछता हूं कि क्या यह सब कुछ विवाह संबंधी हिन्दू आदर्शों के अनुरूप है? क्या सभी लोग ऐसा ही नहीं करना चाहेंगे कि सपिंडो के बीच विवाह समारोह जहां चाहे, मना लें? वे धार्मिक संस्कारों के अनुसार विवाह कर लें और बाद में सिविल विवाह करके उसकी अवैधता को समाप्त कर दें।

अब हम खंड 9 के उपबंधों की चर्चा करेंगे। यह बताया गया है कि धार्मिक संस्कारों के अनुरूप किये गये विवाह को भी विवाह प्रमाण-पत्र रजिस्टर में दर्ज किया जाना चाहिए और यदि ऐसा न किया जाये तो दोषी व्यक्ति को कानून के अनुसार दंड दिया जाना चाहिए। जहां तक उसकी वैधता का संबंध है, यह संदेह जनक है कि वह वैध होगा या नहीं। निःसंदेह राव विधेयक में इस संबंध में विस्तारपूर्वक कुछ नहीं बताया गया है। राव विधेयक में यह बात संबंधित पक्षों पर छोड़ दी गयी है कि वे रजिस्टर में दर्ज करवाए या न करवाएं। राव विधेयक में केवल इस उद्देश्य से यह उपबंध शामिल किया गया था कि विवाह का प्रमाण उपलब्ध हो। परन्तु प्रस्तुत विधेयक में इस उद्देश्य का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। इसमें यह बताया गया है कि कोई भी प्रान्तीय सरकार धार्मिक संस्कारों के अनुरूप विवाह का पंजीकरण करना अनिवार्य कर सकेगी। धारा 6 के उपबंध में लिखा है कि विधेयक के उपबंधों के अनुसार विवाह होना चाहिए तभी वह मान्य होगा यदि ऐसा नहीं किया जाता तो विवाह मान्य नहीं होगा। अतः धारा 6,7,10 और 21 को पढ़ने से स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष सामने आता है कि विवाहित दंपति द्वारा यदि विवाह को प्रमाण-पत्र रजिस्टर में पंजीकृत नहीं करवाया गया तो वह विवाह अवैध

करार दिया जायेगा। मैं विनम्र निवेदन करता हूं कि इस प्रकार के उपबंध के कानूनी परिणाम क्या होंगे? क्या इस प्रकार के उपबंध शास्त्रों के आदेशों में उल्लिखित हिन्दू समाज के आदर्शों के विरूद्ध नहीं हैं जिनमें कहा गया है कि सत्यनिष्ठा से किया गया विवाह का बंधन अटूट है और उसको समाप्त नहीं किया जा सकता है। इस विधेयक के अनुसार यदि कोई विवाहित दम्पत्ति अपने विवाह को दर्ज नहीं करवाता तो उनका विवाह अवैध करार दे दिया जायेगा।

इस विधेयक में अगला उपबंध बहुत मत्वपूर्ण है जो तलाक के बारे में है। इस संबंध में पहले क्या प्रथा प्रचलित थी और विधि मंत्री ने इस बात को सिद्ध करने के लिये नारद और पाराशर की स्मृतियों से उद्धृत किया है कि हिन्दू समाज में तलाक की प्रथा पहले भी प्रचलित थी। मैं विनम्र भाव से कहना चाहता हूं कि श्री द्वारका नाथ मित्तर, राव समिति के विमत टिप्पण रखने वाले सदस्य, ने क्या कहा था, जिनके पास ये धर्मग्रंथ भेजे गये थे और उन्होंने उनकी व्याख्या संस्कृत के अपने ज्ञान के आधार पर ही नहीं की थी बल्कि विद्वान पंडितों द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर भी की थी उनका कहना है कि नारद और पाराशर की रचनाओं की व्याख्या यही है केवल सगाई की अवस्था में संबंध तोड़ा जा सकता है, न कि विवाह हो जाने के बाद। इसलिए तलाक की प्रथा को प्रमाणित करने के लिए स्मृतियों पर विश्वास करने का कोई औचित्य नहीं है।

माननीय विधि मंत्री द्वारा दिये गये तथा पंडित ठाकुर दास भार्गव द्वारा दोहराये गये तर्कों में से एक तर्क यह था कि 90 प्रतिशत हिन्दू समाज में तलाक की प्रथा पहले से विद्यमान है। पंडित ठाकुर दास भार्गव के अनुसार 90 प्रतिशत नहीं बल्कि 95 प्रतिशत हिन्दू समाज में यह प्रथा प्रचलित है। मेरा कहना है कि यदि आप जो कुछ कह रहे हैं वह सत्य है तो तलाक के संबंध में विधान अधिनियमित करने की आवश्यकता ही क्या है? आपको तो बहुसंख्यक के लिए विधान बनाना है, न कि निःसहाय अल्प-संख्यक के लिये। इस विधेयक में तलाक संबंधी जो प्रावधान किया जा रहा है उससे हिन्दू समाज के 90 या 95 प्रतिशत लोगों का जीवन दयनीय बन जायेगा क्योंकि आप यह कह रहे हैं कि उनमें तलाक की प्रथा पहले से विद्यमान है क्योंकि इस विधेयक के उपबंधों के अनुसार प्रत्येक पक्ष को विवाह तोड़ने के लिये न्यायालय में जाना होगा तथा उसके बाद तलाक हो सकता है। जैसाकि एक सज्जन, जिन्होंने इस प्रवर समिति के प्रतिवेदन में विमत टिप्पण दिया है, ने कहा है कि देश के अधिकांश भागों में किसानों में तलाक लेने की व्यवस्था बहुत सीधी सादी है। वे गांव की पंचायत के सामने संबंध विच्छेद करने के दस्तावेज पर हस्ताक्षर करके या किसी अन्य तरीके से ऐसा कर लेते हैं। आपको इस विधान का किसानों, जो जनसंख्या का 90 प्रतिशत हैं, पर पड़ने वाले प्रभाव को भी ध्यान में रखना चाहिए । यदि खंड 34 को कानून पुस्तक में शामिल कर लिया जाए तो उसका क्या

प्रभाव पड़ेगा? प्रत्येक दम्पति, प्रत्येक सदस्य और विवाह से सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्ति को न्यायालय में अथवा जिला न्यायालय में जाना ही होगा, वहां अपील करनी होगी और जब तक ऐसा नहीं किया जायेगा, कोई तलाक नहीं हो सकेगा। मेरा निवेदन है कि इस व्यवस्था से कोई लाभ नहीं होगा बल्कि बड़ी संख्या में लोगों को हानि होगी। इसलिए इस प्रकार से उपबंधों का प्रावधान करने से 5 प्रतिशत निःसहाय अल्पसंख्यक लोगों की कोई सहायता नहीं हो पाएगी बल्कि 90 प्रतिशत लोगों को हानि होगी। इसलिए जब तक इन उपबंधों में आमूल परिवर्तन और संशोधन नहीं किए जाते तब तक इनको कानून की पुस्तक में नहीं लाया जाना चाहिए। अब मैं दत्तकग्रहण के बारे में अपने विचार रखूंगा। यह विधेयक बनाने वाले विद्वान ने भी हिन्दू विधान में दत्तकग्रहण की मूल संकल्पना की उपेक्षा की है। जहां तक मुझे थोड़ी बहुत जानकारी है किसी अन्य कानून के अधीन दत्तकग्रहण की मान्यता प्रदान नहीं की गई है। मुस्लिम कानून में यह प्रथा के अनुसार प्रचलित था परन्तु उसको भी कानून बना कर समाप्त कर दिया गया था। हिन्दू संकल्पना के अनुसार, किसी भी हिन्दू व्यक्ति का जीवन उसकी धार्मिक संकल्पनाओं और धर्म के बीच इतना घुला-मिला है कि दोनों को पृथक करना सम्भव नहीं है।

*** *** ***

मैं यह कह रहा था कि हिन्दू विधान में दत्तक ग्रहण धार्मिक विश्वास से जुड़ा हुआ है जिसके अनुसार दिवंगत मनुष्य की आत्मा की मुक्ति के लिये उसका पुत्र होना बहुत आवश्यक है जो उसका तर्पण करता है ताकि उसके पिता को मोक्ष प्राप्त हो सके। यदि आप दत्तक ग्रहण के बारे में कानून बनाने जा रहे हैं तो आपको उसकी मूल संकल्पना को ध्यान में रखना होगा। अन्यथा इसे समाप्त कर दें। यदि आप संकल्पना को रखते हैं तो दत्तक ग्रहण के सिद्धान्त की मूल भावना को भी ध्यान में रखना होगा। दत्तकग्रहण की वैधता के लिये इस विधेयक में आपने क्या मानदंड निर्धारित किए हैं? हिन्दू विधान में लिखा है कि किसी व्यक्ति के सबसे बड़े बेटे को अथवा जिसका एक ही बेटा है, उसे गोद लिया जा सकता है। आप इस मुख्य सिद्धान्त को नहीं बदलना चाहते हैं और कहते हैं कि सबसे बड़े बेटे को या जिसका एक ही बेटा हो, उसको भी दत्तक लिया जा सकता है।

इस विधेयक में दत्तक ग्रहण की मूल संकल्पना पर कुठाराघात होता है क्योंकि हिन्दू विधान के अनुसार दिवंगत पिता का तर्पण सबसे बड़ा या अकेला पुत्र ही कर सकता है।

इसी प्रकार, दत्तक ग्रहण किये जाने वाले लड़के के लिए इस विधेयक में क्या अर्हताएं निर्धारित की गई हैं? इसके लिए तीन शर्तें निर्धारित की गई हैं—उसकी आयु 15 वर्ष से कम होनी चाहिए, वह विवाहित नहीं होना चाहिए और वह हिन्दू होना चाहिए। मेरा

निवेदन है कि इस प्रकार का उपबन्ध कर आप हिन्दुओं के लिए समस्या पैदा कर रहे हैं क्योंकि दत्तक ग्रहण के संबंध में हिन्दू समाज की सर्वविदित संकल्पना और रीति के अनुसार विवाह कोई अनहर्ता नहीं है और न ही आयु अनहर्ता है। आप ये शर्तें क्यों लगा रहे हैं? आप क्या अपने पिछले अनुभव से आप इस बात को मानते हैं कि कानून लागू करने के लिए ये शर्तें लगाना आवश्यक है? जहां तक मुझे थोड़ी बहुत जानकारी है, ऐसे किसी मामले में कभी कोई कठिनाई नहीं आई। वास्तव में, विवाहित लड़के के दत्तक ग्रहण को कानूनी रूप से वैध ठहराया गया है। इसी प्रकार उसकी जो भी आयु हो, दत्तक ग्रहण वैध माना जायेगा। किन कठिनाइयों को अनुभव किया गया है जिसके कारण विद्यमान विधि में परिवर्तन करने की आवश्यकता अनुभव की गई है? यह बात निर्विवाद रूप से सत्य है कि जब आप कोई परिवर्तन करते हैं तो उसका कोई युक्तिसंगत कारण होना चाहिए, अन्यथा आप को विद्यमान विधि को स्वीकार कर लेना चाहिए।

अब मैं दत्तक ग्रहण के प्रभाव के बारे में कुछ कहना चाहता हूं। आपने हिन्दू विधान के प्रत्येक सुप्रचलित रीति रिवाज को तिलांजलि दे दी है। राव विधेयक में प्रस्ताव किया गया था कि दत्तक ग्रहण के तीन वर्ष के भीतर सम्पत्ति के स्वामित्व का अधिकार छोड़ दिया जायेगा। इस विधेयक में आगे यह कहा गया है कि जैसे ही दत्तक ग्रहण हो जाने के बाद सम्पत्ति पर अधिकार छोड़ने का कोई प्रश्न ही नहीं रह जायेगा। उस तारीख से आधी सम्पत्ति विधवा की या उस व्यक्ति की और आधी उस लड़के की हो ही जायेगी। मेरा निवेदन यह है कि आप दत्तक ग्रहण के सम्बन्ध में एक नया सिद्धान्त क्यों लाना चाहते हैं? इसका क्या कारण है। क्या इस सम्बन्ध में अतीत में कोई कठिनाई अनुभव की गई है?

संयुक्त हिन्दू परिवार के विघटन संबंधी मुद्दा है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मूलभत और महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने का प्रयास किया जा रहा है। संयुक्त हिन्दू परिवार की चिर परिचित संस्था को आप गलत क्यों मान रहे हैं। यह बताया गया है कि अनेक विधि प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है कि मूलतः जिस संयुक्त हिन्दू परिवार की संकल्पना की गई थी वह छिन्न-भिन्न हो गई है। मैं इस बात को स्वीकार करता हूं। परन्तु यदि संयुक्त हिन्दू परिवार की संस्था आदर के योग्य है और यदि विदेशी शासन काल के दौरान वह संस्था छिन्न-भिन्न हो गई है तो आपका कर्तव्य है कि उस संस्था को ही समाप्त कर देने के बजाय उसमें आये दोषों को दूर करने के लिये विधान बनाया जाए और पहले वाली स्थिति बहाल कर दी जाए। परन्तु ऐसा नहीं किया गया है। मैंने माननीय विधि मंत्री से इस बारे में एक शब्द नहीं सुना है जिससे यह पता चले कि संयुक्त परिवार व्यवस्था में कोई दोष है उनका कहना है कि उसकी अच्छी विशेषताएं समाप्त हो गई हैं। इसलिए उस संस्था को ही समाप्त कर दिया जाये। यह निराशाजनक विचार है। मैं इस विचार का

समर्थन नहीं करता। मेरे विचार के अनुसार संयुक्त परिवार संस्था एक ऐसी संस्था है जिस पर विश्व का कोई भी देश गर्व कर सकता है। महोदय, यह एक ऐसी संस्था है जिसने शताब्दियों पहले समाजवादी और साम्यवादी समाज की संकल्पना की थी। महोदय, यह एक ऐसी संस्था है जिसके अन्तर्गत परिवार के अक्षम और विकलांग सदस्यों को भी परिवार के निकाय में बराबर का अधिकार दिया गया है। यह एक ऐसी संस्था है जो.....

*** *** ***

जहां तक मुझे जानकारी है, बंगाल में आंशिक रूप से मिताक्षर और आंशिक रूप से दायभाग प्रथा का प्रचलन है*। महोदय, मेरा कहने का अभिप्राय यह था कि यदि संयुक्त परिवार व्यवस्था का आधार इतना ठोस और मजबूत नहीं रहा जितना कि पुराने जमाने में था तो हमारे विद्वान विधि मंत्री को उसकी जड़ ही काट देने के लिए कानून नहीं बनाना चाहिए था। उस संस्था के संरक्षण के लिए कानून बनाया जाना चाहिए था। अंग्रेजों के शासन काल में, क्योंकि हम विदेशी शासन के अधीन थे, वे हमारी चिरकालिक परम्पराओं को कायम रखने में रुचि नहीं रखते थे। वास्तव में, वे ऐसी परम्पराओं से नफरत करते थे। अब हमारी राष्ट्रीय सरकार सत्ता में आ गयी है, तो क्या उन से यह आशा करना अनुचित है कि वे इस चिरकालिक परम्परा को फिर से बहाल कर दें और उसका सम्मान करें, बजाए इसके कि वे इसको समाप्त ही कर दें। महोदय, मैं निवेदन करता हूं कि इस विधेयक के माध्यम से हिन्दू संयुक्त परिवार व्यवस्था को छिन्न-भिन्न किया जा रहा है। राव समिति ने जो सिफारिश की थी वह इतनी खतरनाक नहीं थी जितना कि इस विधेयक में प्रस्तावित उपबंध हैं। मैं प्रस्तुत विधेयक के खंड 86 और 87 की ओर आपका ध्यान आकर्षित करता हूं। राव समिति ने भाग III क के खंड 1 और 2 में केवल इतना लिखा है कि परिवार में किसी सह-उत्तराधिकारी की मृत्यु हो जाने पर, सम्पत्ति के अधिकार, बाद में जीवित रहने से नहीं बल्कि उत्तराधिकारिता के आधार पर मिलेगा। इसका आशय यह था कि सह-उत्तराधिकार की स्थिति कम से कम एक पीढ़ी तक पहले जैसी बनी रहे। वर्तमान प्रवर समिति और विधि मंत्री सहित उसके कुछ सदस्यों को यह व्यवस्था भी बर्दाश्त नहीं हुई या पसन्द नहीं आयी और उसका परिणाम यह होगा कि जैसे ही यह अधिनियम लागू होगा, धारा 86 और 87 में जो कुछ लिखा है उससे भारत में विद्यमान प्रत्येक संयुक्त परिवार स्वतः ही अस्त-व्यस्त हो जायेगा।

*** *** ***

विधेयक के खंड 86 और 87 में लिखा है कि जिस दिन से यह विधेयक लागू हो जायेगा, उसके बाद जन्म लेने के आधार पर किये गये किसी दावे का कोई भी विधि

---

*श्रीयुत कुलधर चालिहा की इस टिप्पणी की "यह व्यवस्था बंगाल में प्रचलित नहीं है" का उत्तर देते हुए।

न्यायालय संज्ञान नहीं करेगा। प्रत्येक संयुक्त परिवार अलग-अलग समझा जायेगा और संयुक्त काश्तकारी को सामान्य काश्तकारी में बदल दिया जायेगा। परन्तु मैं पूछना चाहता हूं कि आप ऐसा क्यों कर रहे हैं? क्या मौजूदा विधान में संयुक्त परिवार संबंधी विधान में कोई अनिश्चितता की स्थिति बन गयी है? मेरे विचार में ऐसी कोई बात नहीं है। यह सर्वविदित है कि सह-उत्तराधिकार का अभिप्राय क्या है और सह-उत्तराधिकार सम्पत्ति के मामले कैसे होते हैं। आप इसका विभाजन क्यों करना चाहते हैं। मेरा निवेदन यह है कि यह राव समिति द्वारा की गई सिफारिश के भी विरुद्ध है। जहां तक लोकमत का सम्बन्ध है, जो भी थोड़ा बहुत एकत्र किया गया हो, उसे भी प्रस्तुत विधेयक में स्थान नहीं दिया गया, बल्कि राव समिति द्वारा तैयार किये गये विधेयक में उसका ध्यान रखा गया था। इसलिये इस बात का कोई औचित्य समझ में नहीं आता कि इस विधेयक के स्वरूप में इतना महत्वपूर्ण परिवर्तन क्यों किया जा रहा है।

संयुक्त हिन्दू परिवार के लाभ क्या हैं? सह-उत्तराधिकार सम्पत्ति होने के क्या लाभ हैं?* मैं निवेदन करना चाहता हूं कि.....

*** *** ***

निःसंदेह इसका अहितकर पहलू भी है, यदि प्रत्येक व्यक्ति स्वार्थ-भाव से रहने लगेगा, केवल अपना ध्यान ही रखेगा, दूसरे सम्बन्धियों का ध्यान बिल्कुल नहीं रखेगा, तो यह व्यवस्था अहितकर होगी।* यदि हम समाज को स्मृतियों में निहित भाव से देखें, तो हमें दूसरों अर्थात् परिवार के अन्य सदस्यों के लिए भी कुछ त्याग करना चाहिए। यदि हम परिवार को बनाये रखने के लिए कुछ त्याग करते हैं, तो इस व्यवस्था से कोई अहित नहीं होगा। इसमें लाभ ही लाभ है, कोई हानि नहीं है। मेरा निवेदन यह है कि कि सम्भव है कि यह बात प्रत्येक हिन्दू परिवार को स्वीकार्य न हो।

हमारे एक मित्र ने मुझे स्मरण कराया था कि बंगाल और असम में मिताक्षर प्रचलित नहीं है। परन्तु आपको तो पूरे देश का हित ध्यान में रखकर चलना है। आपने 30 करोड़ जनता को ध्यान में रखना है जो कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और गुजरात से लेकर देश के अन्तिम छोर तक फैली हुई है। आप संयुक्त परिवार व्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर देना चाहते हैं और इसका बहुत बड़ी जनसंख्या

---

*श्री के० एन० गुरुस्वामी के इस प्रश्न कि "क्या इसके कोई अहितकर पहलू नहीं है?" का उत्तर देते हुए।

पर प्रभाव पड़ेगा। इसलिये, आपको ऐसा करने से पूर्व कम से कम तीन बार सोचना चाहिए। इस विधान में आप परिवार को छिन्न-भिन्न कर देना चाहते हैं। यदि यह व्यवस्था भ्रष्ट हो गयी है, जीर्ण-शीर्ण हो गयी है, तो हमें उसके लिए दुखी होने की कोई आवश्यकता नहीं है, वह स्वतः समाप्त हो जायेगी। हम उसको नष्ट क्यों करें, हमें उसका अन्त नहीं करना चाहिए।

इसके बाद, महोदय, मैं उत्तराधिकार के प्रश्न पर आता हूं इस सम्बन्ध में मुझे बहुत बड़ी शिकायत है जैसे कि मेरे मित्र श्री नजीरूद्दीन अहमद ने कहा है "राव समिति द्वारा तैयार किये गये विधेयक के स्थान पर विभागीय समिति द्वारा तैयार किये गये विधेयक को रखा गया है और इस विभागीय विधेयक में अनेक नयी बातें जोड़ी गयी हैं। खंड 94 में लिखा है कि इस विधेयक में उल्लिखित उत्तराधिकार सम्बन्धी नियमों से सम्पति को निकाल दिया जायेगा। राव समिति वाले मूल विधेयक में कहा गया था कि उसमें उल्लिखित उत्तराधिकार के नियम कृषि सम्पत्ति पर लागू नहीं होंगे क्योंकि भारत सरकार अधिनियम के अधीन यह मामला केन्द्रीय सरकार के अधिकार क्षेत्र में नहीं आता। राव समिति वाले विधेयक में इस बात का उल्लेख नहीं है कि केन्द्र शासित क्षेत्रों के मामले में, जिन पर भारत सरकार का सीधा नियंत्रण और निरीक्षण है, कोई अपवाद होगा।

महोदय, विभाग द्वारा तैयार किये गये विधेयक में राज्यपाल के 'राज्य में' शब्द जोड़े गये जिसका परिणाम यह होगा कि मेरे राज्य अजमेर-मेरवाड और दिल्ली तथा कुर्ग प्रान्तों में भी जो केन्द्र-शासित क्षेत्र हैं, और इन क्षेत्रों में स्थित कृषि सम्पत्ति पर भी प्रस्तुत विधेयक में उल्लिखित उत्तराधिकार के नियम लागू होंगे। यह देखिए कि इस विधान के माध्यम से कितनी विषमता पैदा हो जायेगी। राज्यपाल शासित राज्यों में बड़ी संख्या में सम्पत्ति पर बिल्कुल भिन्न नियम लागू होंगे जबकि केन्द्र शासित क्षेत्रों में इससे बिल्कुल विपरीत स्थिति होगी। क्या इस विचित्र विधान के माध्यम से यही एकरूपता लाये जाने का दावा किया जा रहा है, क्या यह व्यवस्था एकरूपता के आदर्श के अनुरूप होगी या उसके विपरीत होगी? मेरा निवेदन यह है कि इस विधेयक के उपबन्धों में उल्लिखित उत्तराधिकार के सभी नियम, यदि मेरे राज्य में कृषि सम्पत्ति पर लागू किये जाते हैं और मैं अपने राज्य के बारे में और राज्य में रहने वाली जनता के सम्बन्ध में अपनी थोड़ी बहुत जानकारी के आधार पर कह सकता हूं कि इस विधान को वैसे तो नहीं माना जायेगा, इसका उल्लंघन अवश्य होगा, क्योंकि आपने उत्तराधिकार के जिन नियमों का उल्लेख किया है, वे जनता में प्रचलित रीति रिवाजों और रवायतों के इतने विपरीत हैं कि वे इस बात को स्वीकार नहीं करेंगे कि वे उन पर लागू हों भले ही उनको जीवन का जोखिम उठाना पड़े। भाग 7, अध्याय-2 और अनुसूची 7 में उल्लिखित उत्तराधिकार के नियमों का ब्यौरा क्या है? क्या वे हिन्दू विधान के स्वीकृत सिद्धान्तों या मिताक्षर अथवा दायभाग द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों

के अनुरूप है, आपने इसका संकेत कहां दिया है? उत्तराधिकार के लिए आपने क्या आधार अपनाया है? आपका कहना है कि वह "सहज प्रेम और प्यार" है। जहां तक उत्तराधिकार के मामले में आत्मीयता और समरक्तता का सम्बन्ध है, हिन्दू विधान के एक मूलभूत सिद्धान्त का उल्लंघन किया गया है। हिन्दू विधान में उत्तराधिकार का एक मूलभूत सिद्धान्त यह है कि यह बात संतान की क्षमता और देयता पर भी निर्भर करती है कि वे अपने माता-पिता का किस प्रकार से श्राद्ध करें। उत्तराधिकार के किसी भी विधान में मूलभूत क्षमता को ध्यान में रखा जाना बहुत आवश्यक हो निःसंदेह, आपने निश्चय कर लिया था कि आप हिन्दू विधान की परवाह नहीं करेंगे, वह भिन्न मामला है, ऐसी स्थिति में आप उसमें से "हिन्दू" शब्द का लोप कर दें। इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु यदि आपने हिन्दू विधान की मूल बातों का उल्लेख करना है तो उत्तराधिकार के सिद्धान्तों में सब से पहले जिस बात को ध्यान में रखना होगा वह है अपने पूर्वजों का श्राद्ध करने के लिये उनकी संतान की क्षमता और देयता कितनी है और यह दायभाग का भी आधार है।

*** *** ***

उत्तराधिकार के ये नये नियम लाये जाने का कारण क्या है? भाई और भाई के पुत्र की अवस्था हीनतर कर दी गयी है। भाई और भाई के पुत्र को, पुत्री और पुत्री के पुत्र व पुत्री के बाद रखा गया है। क्या ऐसा हिन्दू विधान के स्वीकृत सिद्धान्तों के अनुसार किया गया है? क्या ऐसा करने से परिवार में शान्ति स्थापित होगी? (अनेक आवाजें. नहीं नहीं) क्या इससे परिवार छिन्न-भिन्न नहीं हो जायेगा? ऐसा सोचा भी नहीं जा सकता। आज भी हिन्दू विधान के अनुसार, यद्यपि शताब्दियों से विनयशीलता में कमी आती जा रही है, भाई और भाई के बीच प्रेम और प्यार है। यह टिप्पणी करते हुए मुझे कृषि से जुड़ी जनसंख्या का ध्यान आता है। आप किसी गांव में जाइए और आपको पता चलेगा कि 10 में से 9 परिवार संयुक्त रूप से रहते हैं। भाई-भाई के साथ रहता है। वह अलग नहीं रहता है जैसे कि आप उत्तराधिकार का अधिकार भाई या भाई के पुत्र की अपेक्षा पुत्री की पुत्री को या पुत्री के पुत्र को दे दोगे, तो समाज उसको सहन नहीं कर पायेगा अथवा यदि सहन कर भी लेगा तो परिवार की शान्ति, जो आज विद्यमान है समाप्त होने में देर नहीं लगेगी। इसलिए हिन्दू विधान के स्वीकृत सिद्धान्तों के इतने विपरीत और सामंजस्यविहीन उत्तराधिकार के नये नियम निर्धारित करने से पूर्व बुद्धिमत्ता से काम लेना होगा।

अब मैं उत्तराधिकार के मामले में पुत्री को पुत्र के बराबर लाये जाने के सिद्धान्त पर अपने विचार प्रकट करता हूं—

*** *** *** ***

महोदय, अब यह तर्क दिया गया है कि धार्मिक ग्रंथों के अनुसार अपने पिता की उत्तराधिकारिता में पुत्री का विशिष्ट हिस्सा था और इसके समर्थन में मनु और यज्ञवल्क्य उद्धृत किया गया है। परन्तु इन हिन्दू विधान सम्बन्धी पुस्तकों की मेरी सरसरी जानकारी के अनुसार स्थिति यह है कि अविवाहित पुत्री के मामले में जो भी हिस्सा निर्धारित किया जाये; हमें बिल्कुल कोई आपत्ति नहीं है। आज भी हम इस व्यवस्था का विरोध नहीं करते। आज भी यह प्रश्न उठता है कि आज स्थिति क्या है? क्या कोई व्यक्ति इस बात से इन्कार कर सकता है? हजारों में से कोई एक पुत्री भी अविवाहित नहीं रहती। पुत्री को, परिवार के स्तर के अनुसार सब से बढ़िया शिक्षा दी जाती है और पुत्रों के समान माना जाता है। जब उसका विवाह होता है, तब परिवार के स्तर के अनुसार उसको दहेज दिया जाता है। विवाह हो जाने पर उसके संबंध भाइयों के साथ समाप्त नहीं हो जाते। जहां तक मुझे अनुभव है, उसे परिवार के प्रत्येक समारोह में आमंत्रित किया जाता है और उसके माता-पिता के परिवार में विवाह के अवसर पर रीति-रिवाज के अनुसार उसको नियत मात्रा में कुछ सामान भी दिया जाता है। क्या कोई व्यक्ति कह सकता है कि न्यायालय में जाने से घर में शान्ति स्थापित हो पायेगी? इससे स्थिति और बिगड़ सकती है परन्तु इस विधेयक में न्यायालय में जाने सम्बन्धी उपबन्ध है जो हमारे लिए बहुत ही शर्मनाक है। हम नहीं चाहते कि हमारी पुत्रियों और बहिनों को न्यायालय में जाना पड़े, हमारे ऋषियों ने कभी सोचा भी नहीं होगा कि उन्हें कानून की सहायता लेनी पड़ेगी। परिवार में पुत्रियों की अनोखी स्थिति होती है। इस प्रकार का कोई उदाहरण अन्यत्र नहीं मिलता। विवाह के बाद भी, जैसाकि मैंने पहले कहा, तीज-त्यौहारों में परिवार के बजट में पुत्रियों के लिए निश्चित हिस्सा होता है। एक प्रश्न पूछा गया था कि क्या वह अपने अधिकार पाने के लिए न्यायालय में जा सकती है? महोदय यदि पुत्री का पिता या कोई भाई उसके प्रति अपने कर्तव्य से विमुख हो जाता है तो समाज उससे नफरत की दृष्टि से देखता है। सर्वसम्मत रीति के अनुसार परिवार की प्रत्येक पुत्री अपने भाई के विवाह के अवसर पर उपस्थित रहनी चाहिए। मैं माननीय सदस्यों को बताना चाहूंगा कि एक विशिष्ट संस्कार होता है जो बहिन व उसके पति को दूल्हे-दुल्हन के घर में प्रवेश से पूर्व करना होता है। यह प्राचीन काल से चली आ रही रीति-रिवाज है। हम पुत्रियों को एक विशेष दर्जा देते हैं। उसे परिवार की सम्पत्ति में हिस्सा देने से आपको क्या लाभ होगा? इस सुधार के लिए एक यह औचित्य बताया जाता है कि पुत्र और पुत्री के बीच पूर्ण समानता होनी चाहिए। मैं पूछना चाहता हूं कि क्या वास्तव में कोई समानता है? आप जो समानता पुत्री को दिलवाना चाहते हैं क्या वह मात्र धोखा नहीं है। दोनों की स्थिति बिल्कुल भिन्न है। अन्ततोगत्वा बेटी को किसी दूसरे परिवार में जाना ही होता है। पुत्र कहीं नहीं जाता।

ये बातें अंतर्निहित हैं, इसीलिये आप जो भी कानून बनायें वह भी स्थितियों के अनुकूल होना चाहिए, उनके विपरीत नहीं। यदि आप इन स्थितियों की उपेक्षा करके कोई कानून बनायेंगे तो समाज छिन्न-भिन्न हो जायेगा।

आज हिन्दू समाज में सम्पत्ति धारकों की प्रतिशतता क्या है? यह बहुत तर्कसंगत प्रश्न है, क्योंकि विद्यमान रीति-रिवाज के अनुसार न केवल पिता का अपनी पुत्री के विवाह के लिए व्यवस्था करने का नैतिक कर्तव्य है, बल्कि भाई का भी चाहे उसको पिता की कोई सम्पत्ति मिले या न मिले, यह नैतिक कर्तव्य है कि अपने पिता के न रहने पर वह अपनी बहिन के विवाह करने के लिए व्यवस्था करे।

****** ****** ******

माननीय सदस्य हिस्से की बात कर रहे हैं जबकि मैं ऐसे परिवार की बात कर रहा हूं जिनके पास कोई सम्पत्ति नहीं है।* ऐसे परिवार में बहिन की स्थिति क्या होगी? आप किसी भी गांव या कस्बे में जाकर देख सकते हैं। आपको ऐसे अनेक मामलों का पता चलेगा जिनके पिता की मृत्यु हो गयी है और बहिन भाई के साथ रह रही है। यह भाई अपनी बहिन का विवाह करने का अपना नैतिक कर्तव्य समझता है और वह इस कार्य के लिये ऋण भी लेता है। जब तक वह अपने नैतिक कर्तव्य का पालन नहीं कर लेता तब तक वह अपने बारे में सोचता तक नहीं है।

महोदय, मुझे हिन्दू कोड बिल पर अपने अधूरे भाषण को पूरा करना है।** परन्तु ऐसा करने से पूर्व मैं आपका ध्यान इस महत्वपूर्ण सत्र के पहले दिन माननीय प्रधान मंत्री द्वारा की गयी घोषणा की ओर दिलाना चाहता हूं।

महोदय, माननीय प्रधान मंत्री ने इस विधेयक को एक सरल और आवश्यक विधान बताया था। मैं सविनय इसका विरोध करता हूं। सभा के विचाराधीन यह विधेयक सरल नहीं है। मुझे यह कहने की भी अनुमति दी जाये कि इस विधेयक का विरोध करने वाले कुछ सदस्यों पर माननीय प्रधान मंत्री ने आरोप लगाया है कि वे विलम्ब करने वाले हथकंडे अपना रहे हैं। जो लोग इस सभा और यहां पर चली कार्यवाही से भली-भांति परिचित हैं, वे इस बात को स्वीकार करेंगे कि इस विधेयक पर अभी पर्याप्त चर्चा नहीं हुई है। यह बहुत ही महत्वपूर्ण विधेयक है, यह हिन्दू समाज के लिये जीवन और मृत्यु का मामला है परन्तु इस विधान मंडल में इस पर बहुत कम समय ही चर्चा हुई है। यदि

---

*श्रीमती जी॰ दुर्गाबाई के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कि "क्या आप सोचते हैं कि यदि कोई भाई अपनी बहन को हिस्सा देता है तो वह अपने नैतिक कर्तव्य का पालन नहीं करेगा।"

**भारत की विधान सभा (विधायी) वाद-विवाद 12 दिसम्बर, 1949, पृष्ठ 464—474

आप पिछले अवसरों पर, जब शारदा अधिनियम विधेयक और हिन्दू महिला सम्पत्ति अधिकार अधिनियम (विधेयक) इस विधान मंडल के समक्ष चर्चा हेतु प्रस्तुत किये गये थे ध्यान दें तो पता चलेगा कि इसने कितने विवादों को जन्म दिया था। उन विधेयकों की तुलना में यह विधेयक बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। इसका प्रभाव हिन्दू समाज के पूरे ढ़ांचे पर पड़ेगा। यह विधेयक जब कानून का रूप लेगा, लोग मेरे से असहमत हो सकते हैं। प्रधान मंत्री मेरे से सहमत हो सकते हैं किन्तु मैं महसूस करता हूं कि हिन्दू समाज का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। मतलब यह नहीं है कि 30 मिलियन हिन्दू समाप्त हो जायेंगे, बल्कि इसका तात्पर्य यह है कि हिन्दू समाज की विशिष्टताएं समाप्त हो जायेंगी।

यह कोई सरल विधेयक नहीं है। परन्तु सच्चाई यह है कि इस विधेयक का उद्देश्य हिन्दू समाज के समूचे ढांचे की तहस-नहस करता है। इस विधेयक में विवाह की विधि, तलाक की विधि, दत्तकग्रहण की विधि, अल्पसंख्यक और अभिभावक संबंधी विधि, हिन्दू संयुक्त परिवार संबंधी विधि, उत्तराधिकार संबंधी विधि और सब कुछ जिससे हिन्दू समाज बनता है या उसकी जो कुछ विशेषता बची है उसको बदल देने की गरज से बनाया गया है। केवल एक ही स्तंभ नहीं, बल्कि सभी स्तंभों की, जिन पर हिन्दू समाज टिका हुआ है, बुनियाद को झकझोर कर रख दिया गया है। इसलिये, महोदय, यह उपयुक्त भी है और उचित भी कि हम विधायक, जो जनता के हितों के संरक्षक हैं, अपनी योग्यता के अनुसार अपने कर्तव्य का निर्वाह करें और सुनिश्चित करें कि हम जिस विधेयक पर विचार कर रहे हैं, उसको देश का जनमत कहां तक चाहता है। इस विधेयक को एक साधारण विधेयक कह देना उचित नहीं है।

इसके अतिरिक्त मुझे यह कहना है कि जहां इस विधेयक को एक साधारण विधेयक कहना उचित नहीं, वहीं इसे आवश्यक कहना भी अनुचित होगा। मैं विनम्र भाव से पूछना चाहता हूं कि आखिर इस विधेयक की आवश्यकता ही क्या है? यदि इस विधेयक को नया विधान मंडल बन जाने तक, स्वाधीन भारत में वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रभुसत्ता सम्पन्न संसद के अस्तित्व में आ जाने तक स्थगित कर दिया जाता है या कानून की पुस्तक में सम्मिलित नहीं किया जाता, तो क्या हो जायेगा? क्या हिन्दू समाज किसी ऐसे रोग से इतना अधिक पीड़ित है कि यदि इस विधेयक को कुछ महीनों बाद कानून का रूप दिया गया, तो सारा समाज खंड-खंड हो जायेगा?

मेरा निवेदन है कि यह किसी भी प्रकार से आवश्यक नहीं है। हम एक दो वर्ष प्रतीक्षा कर सकते हैं। हिन्दू समाज जिसने शताब्दियों तक अनेक सभ्यताओं के आघात का, विदेशी आक्रमणों का सफलतापूर्वक सामना किया और जो शताब्दियों तक राजनैतिक दासता में जकड़ा रहा वह इस विधान को पारित किये बिना एक दो वर्ष और भी जीवित रह सकता है।

** ** **

महोदय, मैं अपने माननीय मित्र के हस्तक्षेप के बावजूद, पुरजोर यही कहूंगा कि यह सभा अपने वर्तमान रूप में इस प्रकार के महत्वपूर्ण विधान पर विचार करने के लिए पूर्णतः अक्षम है। *प्रश्न यह है.....।

महोदय, मुझे अपने माननीय मित्र द्वारा किये गये हस्तक्षेप के कारण ही यह बात कहनी पड़ी। मैं इस महत्वपूर्ण विधान को पारित करने संबंधी इस सभा की संवैधानिक शक्तियों को चुनौती नहीं दे रहा हूं** लेकिन यह औचित्य का प्रश्न है। क्या आप एक पूर्ण शक्ति सम्पन्न विधानमंडल के कार्यों में हस्तक्षेप कर सकते हैं। क्या यह सभा जिसे भारत का संविधान तैयार करने के विशेष प्रयोजन के लिये बनाया गया है, ऐसा कर सकती है? अतः मेरा निवेदन है कि इस प्रश्न के संवैधानिक पहलू तथा इस विधानमंडल की विधि सम्मत शक्ति के अलावा यह एक औचित्य का प्रश्न है और यह प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण है। मैं यह अनुभव करता हूं कि अपने माननीय मित्र और उनके समर्थकों की टोका-टाकी के बावजूद इस सभा को ऐसे महत्वपूर्ण विषय पर विचार करने से पूर्व अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिये। मेरा मत है कि यह विधान पारित करना अनिवार्य नहीं है और सरकार को इस प्रश्न को सभा में विश्वास प्रस्ताव का मुद्दा बनाने की घोषणा नहीं करनी चाहिये। इस प्रश्न पर हमें शांतिपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है तथा इस विधान के परिणामस्वरूप हिन्दू समाज के समस्त ढांचे पर होने वाले कुप्रभावों पर भी विचार करना चाहिये।

इस विधेयक द्वारा जो नयी व्यवस्था की जा रही है, अब मैं उस विषय पर पुनः आता हूं। इस विधेयक द्वारा उत्तराधिकार के मामले में पुत्री और पुत्र दोनों को समान दर्जा दिया जा रहा है। मेरा विनम्र निवेदन है कि इस प्रकार की नयी व्यवस्था करने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। इस नई व्यवस्था से हिन्दू समाज का सम्पूर्ण ढांचा ध्वस्त हो जाएगा। यह कैसे संभव है? हिन्दू समाज की वास्तविक स्थिति क्या है? पुरुष और स्त्री, पुत्र और पुत्री के बीच भेद इसका अभिन्न अंग है। पुत्र अपने जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त

---

*श्री एस० नागप्पा, जिन्होंने व्यवस्था का प्रश्न उठाया था और कहा था कि माननीय सदस्य यह कहकर सभा पर आक्षेप कर रहे हैं कि यह सभा इस विषय पर विचार करने के लिए सक्षम नहीं है और नयी सभा के निर्वाचन तक प्रतीक्षा करनी चाहिये, के कथन पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए।

**श्री ताजामुल हुसैन, जिन्होंने व्यवस्था का प्रश्न उठाया था और कहा था "महोदय, सभापति द्वारा यह निर्णय दे दिया गया है कि यह सभा इस विधेयक पर विचार करने के लिए सक्षम है क्या इस निर्णय के पश्चात कोई सदस्य सभा की इस सक्षमता को चुनौती दे सकता है?" के कथन पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए।

उसी परिवार में रहता है जहां उसका जन्म होता है जबकि पुत्री को दूसरे परिवार में जाना होता है। इस जन्मजात व्यवस्था का क्या परिणाम होता है? क्या हिन्दू विधान के निर्माता, शास्त्रों के रचयिता इतने पतित थे। अथवा नारी जाति के इतने विरोधी थे कि उन्होंने इसके प्रति अन्याय और असमानता पैदा करने के लिये ही ऐसा किया। मेरा विनम्र अनुरोध है कि ऐसा कहना हिन्दू विधि और हिन्दू शास्त्रों की गलत व्याख्या करना होगा। वास्तव में पिता की सम्पत्ति पर पुत्री को अधिकार देने के परिणामों की कल्पना कर मैं कांप उठता हूं। माननीय विधि मंत्री डा० अम्बेडकर ने अपने भाषण में कहा था कि यदि एक हिन्दू के बारह पुत्र और एक पुत्री है तथा उसकी मृत्यु के पश्चात् उसकी सम्पत्ति को यदि बारह के स्थान पर तेरह भागों में विभाजित किया जाता है तो कोई आकाश नहीं गिर जायेगा। मैं माननीय मंत्री जी से निवेदन करूंगा कि यदि मामला इससे विपरीत हुआ और किसी का एक पुत्र और बारह पुत्रियां हुईं; तो ऐसी स्थिति में क्या होगा?

*** *** ***

क्या परिवार के एक मकान को तेरह भागों में विभाजित किया जायेगा।* महोदय, आप केवल नगरों में रहने वालों के बारे में ही न सोचें जोकि विशाल भवनों में रहते हैं, अपितु ग्रामीण भारत, जहां परिवार के पास एक छोटा सा घर होता है उसके बारे में सोचें। यदि पिता की मृत्यु के पश्चात् उसके घर को तेरह भागों में विभाजित किया जाये और बारह दामाद उस घर में रहने लगें तो क्या स्थिति होगी? महोदय, प्रस्तावित विधान में यह व्यवस्था भी की गयी है कि पुत्री किसी भी व्यक्ति से विवाह करने के लिए स्वतंत्र है, यहां तक कि यदि वह किसी गैर-हिन्दू व्यक्ति से भी विवाह करने का साहस करे तो भी उसके लिये कोई रुकावट नहीं है और इससे वह अपने उत्तराधिकार से वंचित नहीं होगी। इसका परिणाम क्या होगा? इसका यही परिणाम होगा कि प्रत्येक परिवार में फूट पड़ेगी, झगड़े होंगे और संभवत् हत्याएं भी हो सकती हैं। अतः महोदय, मेरा विनम्र निवेदन है कि जब आप इस प्रकार का विधान बनाने जा रहे हैं तो आपको विधि मंत्री द्वारा बताये गये ठोस उदाहरण के पहलुओं पर ही विचार नहीं करना है अपितु मामले के हर संभव पहलू पर विचार करना है तथा उसी आधार पर विधान बनाना चाहिये।

हिन्दू समाज में पुत्री के दर्जे के संबंध में यह हीन भावना क्यों है? मैं इसके वास्तविक निहितार्थ से सहमत नहीं हूं। वस्तुतः हिन्दू समाज में पुत्री को बहुत ही ऊंचा और सम्माननीय स्थान दिया गया है। किसी दूसरे परिवार में उसका विवाह होने पर पिता के परिवार से उसका संबंध विच्छेद नहीं हो जाता। उसे जन्म, मृत्यु, विवाह जैसे प्रत्येक

---

*श्री जगजीवन राम के इस कथन कि "तेरह भाग होंगे" पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए।

अवसर पर कुछ अनिवार्य परम्पराओं का निर्वाह करने के लिये अपने पिता को परिवार में आना होता है और इन अवसरों पर हिन्दू परिवार में पुत्री को उपहार दिये जाते हैं। पुत्री के संबंध अपने पिता के परिवार से जीवन पर्यन्त बने रहते हैं। उसके बच्चे के जन्म पर उसके भाइयों द्वारा उसे उपहार दिये जाते हैं। बहिन के परिवार में प्रत्येक विवाह के अवसर पर भाइयों द्वारा अपनी बहिन को उपहार दिया जाना अनिवार्य परम्परा है। ऐसी स्थिति में यह कहना सही नहीं है कि पुत्री का सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं है। मेरा विनम्र निवेदन है कि इस प्रश्न पर जो दृष्टिकोण अपनाया गया है, उसे यदि आप हिन्दू सभ्यता, हिन्दू आदर्श तथा हिन्दू विचारधारा के मानदंड से देखें, तो वह नितांत गलत है परन्तु यदि आप इसे गैर हिन्दू अथवा हिन्दू विरोधी दृष्टिकोण से देखें तो निःसंदेह आप विपरीत दृष्किोण अपना सकते हैं।

पैतृक परिवार में पुत्री को हिस्सा देने के क्या परिणाम हो सकते हैं? आप एक मुसलमान परिवार को देखिये। पिता की सम्पत्ति में पुत्री को अधिकार देने का अनिवार्य परिणाम यह होगा कि चचेरे और ममेरे भाइयों के बीच विवाह एक साधारण बात हो जायेगी और बहुत शीघ्र ही प्रतिबंधित रिश्तों के बीच भी विवाह होने लगेंगे। यदि आप पिता की सम्पत्ति में पुत्री के अधिकार के इतिहास की विभिन्न देशों में यथा मिश्र, यूनान और रोम में अथवा इस्लामी कानून में खोज करें तो उसका एक ही निश्चित परिणाम सामने आएगा कि चचेरे और ममेरे भाइयों से विवाह करने की संभावना बढ़ जायेगी। हिन्दू दृष्टिकोण से ऐसी स्थिति भयावह है जिसे कोई भी हिन्दू सहन नहीं कर सकेगा।

अब मैं इस विषय के दूसरे पहलू को लेता हूं। इस विधान में पुत्री को पुत्र के समान अधिकार दिये जाने भर से क्या आपका उद्देश्य पूरा हो जायेगा अर्थात् पुत्री को सम्पत्ति पर अधिकार प्राप्त हो जायेगा। वस्तुतः ऐसा नहीं होगा। इसके विपरीत ऐसी व्यवस्था से कई बुराइयां पैदा हो जायेंगी। वर्तमान हिन्दू संहिता के उपबन्धों के अनुसार कोई भी पिता जीवित रहते हुए अपने किसी भी पुत्र को उपहार स्वरूप अथवा वसीयत के द्वारा अपनी समस्त संपत्ति दे सकेगा। क्या इसमें कोई रुकावट है? यदि नहीं, तो जब तक समाज पुत्री को समान अधिकार देने के लिये तैयार न हो तब तक इस विधान का फल यह होगा कि पिता अपनी समस्त सम्पत्ति पुत्रों को अपने जीवन काल में ही वसीयत अथवा उपहार स्वरूप दे देगा। वकील के रूप में मुझे न्यायालयों का कुछ अनुभव है। मेरे अन्य माननीय मित्रों को भी न्यायालयों का बहुत अनुभव है। क्या यह सही नहीं है कि वसीयत अथवा वसीयत के प्रतिसंहरण के दस मामलों में से नौ मामले अदालत में जाते हैं और उन पर वर्षों मुकदमा चलता रहता है। वहां न केवल वसीयत कर्ता के वसीयत करने के अधिकार अपितु वसीयत के जटिल मसौदे के विभिन्न खंडों की व्याख्या के संबध में जटिल प्रश्न न केवल निचली अदालत में अपितु उच्चतम न्यायालय प्रिवी कौंसिल में भी

उठायें जाते है। ऐसी स्थिति में आप पुत्री के हितों की रक्षा किस प्रकार कर सकते है? मेरा विनम्र निवेदन है कि आप ऐसा विनाशकारी विधान पारित कर पुत्री के हितों की रक्षा नहीं कर सकते अपितु इससे उसे जो हानि होगी आप उसका निराकरण नहीं कर सकेंगे। इससे हिन्दू परिवार की विचारधारा में मनोवैज्ञानिक परिवर्तन आ जायेगा। जैसे ही कानून में पिता की सम्पत्ति में पुत्री के हिस्से की व्यवस्था हो जाएगी भाई स्वयं को बहिन के भरण-पोषण तथा उसके विवाह के दायित्व से मुक्त समझेगा। आज हिन्दू परिवारों की क्या स्थिति है? ऐसे कितने प्रतिशत परिवार हैं जिनकी अचल सम्पत्ति है? ऐसे परिवार 40% से अधिक नहीं हैं? तब शेष 60% परिवारों का क्या होगा। मिताक्षर कानून के अधीन आने वाले 60% परिवारों को, जिनके पास कोई सम्पत्ति नहीं है, स्थिति क्या होगी, इसकी कल्पना करके दिल दहल जाता है, क्योंकि कानून के अनुसार बहिन का अधिकार भाई के बराबर हो जाता है अतः भाई बहिन के विवाह तक उसके भरण-पोषण, उसके विवाह तथा उसके लिए दहेज की व्यवस्था करने के दायित्व से अपने को मुक्त समझेगा। इस विनाशकारी उपबंध का एकमात्र यही परिणाम होगा और पुत्री को इसका कोई लाभ नहीं होगा। इसलिए मेरा विनम्र अनुरोध है कि केवल इस आधार पर नहीं कि पुत्री पुत्र के समान नहीं है अथवा महिलाओं के प्रति कोई पूर्वाग्रह होता है अपितु पुत्री के हित में भी इस प्रकार का विधान पारित नहीं होना चाहिए। निःसंदेह पुत्री अपने हितों की रक्षा अन्य प्रकार से भी अपने ससुर से कर सकती है। उसको अपने पति की सम्पत्ति पर महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त हो सकता है।

*यदि उन्हें यह अधिकार दे दिया गया है तो उन्हें पिता की सम्पत्ति में हिस्सा देने की कोई आवश्यकता नहीं है। मेरे विचार से कानून में उसे जो अधिकार प्राप्त हैं वह सीमित हैं आप उसकी सीमा बढ़ाकर उसे अपने ससुर की सम्पत्ति पर उसके पति के समान अधिकार दे सकते हैं। यह बहुत अच्छा सुझाव है हम इस पर विचार कर सकते हैं।

अब मैं इस क्रांतिकारी विधेयक में दिए गए एक अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन पर आता हूं। मेरा तात्पर्य संयुक्त परिवार के विघटन से है। विधेयक की धारा 86 में एक महत्वपूर्ण व्यवस्था की गई है जिसके अधीन भविष्य में कोई भी न्यायालय जन्मजात अधिकार को मान्यता नहीं दे सकेगा। मुझे इस उपबंध के दुष्परिणाम प्राप्त होने की आशंका है। यह कहा गया है कि बंगाल और असम पहले ही "दायभाग" कानून की व्यवस्था के अधीन आते हैं। यह व्यवस्था संयुक्त परिवार प्रणाली को मान्यता नहीं देती है। इसके अंतर्गत परिवार के सभी सदस्यों के अधिकार समान होते हैं। क्या इसका यह अर्थ है कि समस्त

---

*श्री एल. कृष्णास्वामी भारती के इस कथन कि—"हमने उन्हें यह अधिकार दे दिया है" पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए।

भारत में यह प्रणाली लागू कर दी जाये। यदि पांच करोड़ व्यक्ति इस व्यवस्था के अधीन आते हैं और बीस करोड़ व्यक्ति दूसरी व्यवस्था के अधीन आते हैं तो पांच करोड़ व्यक्तियों के कानून को बीस करोड़ व्यक्तियों पर लागू करने का क्या औचित्य है? मेरे विचार से यह एकदम गलत है। एक हिन्दू पुत्र को सम्पत्ति के अर्जन का जो जन्मजात महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त है उससे पिता के अपव्यय और फिजूलखर्ची पर रोक लगती है। इस महत्वपूर्ण अधिकार ने हजारों हिन्दू परिवारों की सम्पत्ति की रक्षा की है। इस अनिष्टकारी विधान की धारा 86 के द्वारा इस अधिकार को समाप्त किया जा रहा है। इतना ही नहीं इस विचित्र विधान की धारा 87 में यह उपबंध है कि इस विधेयक के लागू होने पर प्रत्येक संयुक्त परिवार को अनिवार्य रूप से विभाजित होना पड़ेगा। अनिवार्य विभाजन क्यों हो? मेरा निवेदन है कि ये उपबंध इतने सरल नहीं है अपितु बहुत क्रांतिकारी हैं जिनके व्यापक परिणाम होंगे। ऐसा कोई कारण नहीं है कि विधान में इस प्रकार के व्यापक परिणाम वाले परिवर्तन किए जायें।

अब मैं विधेयक में शामिल किए गए एक अत्यंत महत्वपूर्ण उपबंध को लेता हूं। जिसमें विवाह-विच्छेद की व्यवस्था है। खंड 30 में वे आधार दिए गए हैं जिनसे विवाह-विच्छेद हो सकता है। एक अन्य संगत खंड 33 है जिसमें वे आधार दिए गए हैं जिनके आधार पर विवाहित दम्पति में से एक पक्ष न्यायिक पृथक्करण की मांग कर सकता है। इसके अलावा इसमें विवाह को रद्द घोषित करने के भी उपबंध हैं। हिन्दू विधि और हिन्दू समाज की दृष्टि से यह एकदम नई व्यवस्था है। वस्तुतः कानून में इस प्रकार की व्यवस्था से वकीलों की चांदी हो गई है। विवाह को रद्द घोषित करने के लिए मामले को न्यायालय में ले जाया जा सकता है। विवाह-विच्छेद के लिए भी न्यायालय की शरण ली जा सकती है। न्यायिक पृथक्करण के लिए भी न्यायालय का दरवाजा खटखटाया जा सकता है। यूरोप के विभिन्न देशों में विवाह-विच्छेद संबंधी मामलों से हमें क्या शिक्षा मिलती है। वास्तव में यह अत्यंत आश्चर्य और चिंता का विषय है कि पश्चिमी देशों अमेरिका तथा इंग्लैंड के अनुभवों से जहां प्रत्येक छः विवाहों में से एक विवाह-विच्छेद हो जाता है, हमने कोई शिक्षा ग्रहण नहीं की। किसी भी समय हमारे समाज में ऐसी स्थिति नहीं रही है। हम विधान में ऐसी व्यवस्था क्यों करें कि हमें न्यायालय का सहारा लेने के लिए बाध्य होना पड़े। खंड 34 में यह व्यवस्था की गई है कि प्रत्येक विवाह जिला-न्यायालय द्वारा ही सम्पन्न हो सकेगा अथवा उसका विच्छेद हो सकेगा। इसमें यह भी व्यवस्था है कि विवाह-विच्छेद के प्रत्येक मामले को खंड 44 के अधीन पुष्टि के लिए उच्च न्यायालय में ले जाना अनिवार्य होगा। क्या इससे हम वकीलों को पैसा बटोरने का अवसर प्रदान नहीं कर रहे हैं? क्या किसी विधान द्वारा समाज में मुकदमों की संख्या बढ़ाना न्यायोचित है? अतः मेरा अनुरोध है कि खंड 30 और खंड

33 में न्यायिक प्रथक्करण अथवा विवाह-विच्छेद करने की की गई व्यवस्था न केवल हिन्दू समाज द्वारा मान्य आदर्शों के प्रतिकूल है बल्कि यह हमारी सभ्यता एवं संस्कृति के भी एकदम प्रतिकूल है। यह धार्मिक विधि से किए गए विवाह के एकदम विरुद्ध है क्योंकि ऐसा विवाह दो पक्षों के बीच हुए करार पर आधारित नहीं होता जिसे किसी एक पक्ष की जिद से समाप्त कर दिया जाए, अपितु वह एक ऐसा पवित्र बंधन है जिसकी बुनियाद अतीत में होती है। हिन्दू विवाह की अवधारणा यह है। अतः न्यायिक पृथक्करण अथवा विवाह विच्छेद संबंधी ये उपबंध विवाह के विषय में हमारी अवधारणा के सर्वथा विपरीत है फिर भी पश्चिमी देशों में जहां इस प्रकार के विवाह संबंध और तलाक इत्यादि सामान्य बात हो गई है लोग इससे तंग आ चुके हैं, वहां के विचारक ऐसी व्यवस्था को समाज के लिए घातक मानने लगे हैं। यह वास्तव में बड़ी हैरानी की बात है कि हम ऐसी व्यवस्था की नकल करने जा रहे हैं। अतः मेरा अनुरोध है कि बड़ी सावधानी से विचार किया जाना चाहिए कि न्यायिक पृथक्करण के क्या आधार होते हैं? विवाहेत्तर संबंध। कानून कहता है कि वैवाहिक संबंध न्यायिक पृथक्करण अथवा विवाह विच्छेद के द्वारा समाप्त किया जा सकता है। दम्पत्ति के दिमाग में यह कीटाणु पहले से ही मौजूद हैं और मैं इस संबंध में सभा का ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा कि क्या यह सच नहीं है कि जब कभी परस्पर झगड़ा होगा, जैसा कि परिवारों में प्रायः होता रहता है, विधेयक के इन उपबंधों के कारण दम्पत्ति को अपने झगड़े अथवा पारिवारिक विवाद को न्यायालय में ले जाने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा और यह बहुत खराब बात है क्योंकि कोई भी पति अथवा पत्नी अपनी पत्नी अथवा पति पर विवाहेत्तर संबंध का आरोप बड़ी आसानी से लगा सकता है और ऐसे लोग तो हर जगह पाए जाते हैं जो परिवारों को तोड़ने की ताक में रहते हैं। इसका परिणाम यह होगा कि बहुत ही तुच्छ कारण से भी तलाक होने लगेंगे जो हिन्दू समाज के लिए घातक होगा। हमारे समाज ने शताब्दियों तक भीषण आघातों का सामना किया इसके बावजूद पतिव्रत भक्ति की अंतर्निहित व्यवस्था के कारण हमारा समाज विश्व में एक आदर्श समाज के रूप में कायम रहा। यह उपबंध उन समुदायों के लिए भी उपयुक्त नहीं है जिनमें तलाक लेना एक परम्परा है। इनसे अवरोध पैदा होगा और उन्हें न्यायालय की शरण लेनी होगी। यह हमारी संस्कृति और सभ्यता तथा हमारे आदर्श वैवाहिक जीवन के मान्य आदर्शों के विपरीत है। यह तर्क प्रायः बार-बार दिया गया है कि इस विधेयक में कोई मौलिक अथवा क्रांतिकारी उपबन्ध नहीं हैं और विवाह एवं तलाक से संबंधित उपबंध अनुमत्य और समर्थनकारी स्वरूप के हैं। यदि ऐसा है तो खंड 5 से 51 तक सभी खंड समाप्त कर दिए जाने चाहिए और उनके स्थान पर केवल एक खंड रखा जाए जिसमें यह व्यवस्था हो कि कोई भी हिन्दू किसी भी व्यक्ति से विवाह कर सकता है क्योंकि यह एक समर्थनकारी उपबंध होगा। वह अपनी इच्छा से अपनी बहिन

से भी विवाह कर सकता है। अतः इसके लिए इतने अधिक खंडों वाला व्यापक विधेयक लाने का कोई लाभ नहीं है। क्यों न सारे खंडों को हटाकर एक सामान्य खंड रखा दिया जाए। ऐसा विधेयक एक आदर्श सरल विधेयक होगा तथा सभ्यता की जिस मंजिल से हम गुजर रहे हैं वह उसका भी आदर्श प्रस्तुत करेगा। अतः मेरा यह विनम्र निवेदन है कि विधेयक के ये उपबंध हिन्दू दृष्टिकोण से अनिष्टकारी हैं उन्हें इस प्रकार के विधेयक में स्थान नहीं दिया जाना चाहिए।

अब मैं दूसरे विषय पर आता हूं। इस विधेयक के उपबंधों के अधीन खंड 91 बहुत संगत है। इसके अनुसार स्त्री को दी जाने वाली सम्पत्ति, चाहे वह उसके पिता, ससुर अथवा किसी अन्य स्रोत से आए, पर मात्र उसी का अधिकार होगा। खंड 106 से 109 में स्त्री सम्पत्ति के अन्तरण की व्यवस्था की गई है। वस्तुतः ये उपबंध भी पारिवारिक शांति में सहायक नहीं होंगे। वे निश्चित रूप से अनिष्टकारी हैं। इनमें से प्रत्येक उपबन्ध हिन्दू आदर्शों की अवधारण के विपरीत है और वह सम्पत्ति जिसे स्त्री विरासत के रूप में प्राप्त करती है और जिस पर खंड 91 के अनुसार उसका पूर्ण अधिकार है अथवा अन्तरण खंड 106 से 109 में निहित व्यवस्था के अनुरूप होगा। इस विरासत पर सर्वप्रथम पति और बच्चों का बराबर का अधिकार होगा। यदि उसके पति और बच्चे नहीं हैं तो विधेयक के अन्तर्गत इस सम्पत्ति का उत्तराधिकारी कौन व्यक्ति होगा। तब उस पर माता, पिता और पति के संबंधियों का अधिकार होगा। क्या मैं इस सभा के माननीय सदस्यों से पूछ सकता हूं कि हिन्दुओं के इस देश में कोई ऐसे माता-पिता हैं जिन्हें अपनी पुत्री की सम्पत्ति को लेकर प्रसन्नता होगी?

मैं दक्षिण भारत के संबंध में तो दावे के साथ यह नहीं कह सकता परन्तु समस्त उत्तर भारत में स्थिति यही है। वहां ऐसा विचार भी अशोभनीय है। धन और सम्पत्ति को तरजीह देने वाले कुछ लोग अपवाद स्वरूप हो सकते हैं। उनके लिए धर्म का कोई महत्व नहीं है। लेकिन मैं उक्त अपवादों की बात नहीं कर रहा हूं अपितु उत्तर भारत के सामान्य माता-पिता की बात कर रहा हूं। पुत्री से कोई भी वस्तु लेने का विचार ही उनके लिए घृणास्पद है। जब माता-पिता एक साथ बैठकर अपनी पुत्री को दहेज तथा आभूषणों के साथ दूल्हे को कन्यादान में दे देते हैं तदुपरांत देश में इस क्षेत्र के माता-पिता अपनी कन्या के यहां जल भी ग्रहण नहीं करते।

*आपके क्षेत्र में यह रीति अथवा दस्तूर हो सकता है लेकिन हमारे क्षेत्र में अधिकांश

---

*श्री एल० कृष्णास्वामी के इस कथन कि "हमारे क्षेत्र में इस बात को इतना बुरा नहीं समझते" पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए।

लोग इस विचार का विरोध करेंगे। वे पुत्री से उत्तराधिकार में कुछ भी पाने की कल्पना तक नहीं कर सकते। अतः उत्तराधिकार हस्तांतरण संबंधी नियमों की सारी व्यवस्था हिन्दू आदर्शों के विरुद्ध है। यदि श्री भारती हमारे क्षेत्र के ग्रामीण इलाकों में जायें तो उन्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि न केवल लड़की के माता-पिता अपितु लड़की के गांव के निवासी भी उस गांव का जल भी ग्रहण नहीं करेंगे जहां लड़की ब्याही गई है।

उत्तराधिकार हस्तांतरण के नियमों के अंतर्गत माता-पिता के बाद लड़की की सम्पत्ति का अधिकारी कौन होगा? यदि इसे पति के संबंधियों को देने की व्यवस्था है तो यह अनिष्टकारी है क्योंकि इससे पारिवारिक कलह पैदा होगी। यदि यह सम्पत्ति पुत्री को उसके पिता से मिली है तो यह पति के संबंधियों को क्यों मिले? इसीलिए हमारे संहिताकारों ने स्त्री धन को कई श्रेणियों में विभाजित किया है और विभिन्न संबंधियों को दिया जाता है। आप हमारे संहिताकारों, जिन्होंने ये विशेष उपबंध तैयार किए थे, उदात्त मन्तव्य समझ पाने में सक्षम नहीं है, आप उनके आदर्शों को सादगी के नाम पर बलिदान करना चाहते हैं। स्त्री-धन की हमारी मान्य धारणाओं के अनुसार यदि उसे सम्पत्ति पिता से प्राप्त हुई है तो उस पर पिता के संबंधियों का अधिकार होगा। धारा 106 से 109 में इस प्रकार का कोई उपबंध क्यों नहीं कर दिया जाता। यह हिन्दू आदर्शों के अनुरूप होगा।

अब मैं विधेयक के अन्य उपबंधों को लेता हूं। इस संहिता के लागू होने के दिन से संयुक्त काश्तकारी सामान्य काश्तकारी के रूप में बदल जाएगी। विधेयक के खंड 115 के उपबंध के अधीन कोई भी उत्तराधिकारी न्यायालय में जाकर पारिवारिक सम्पत्ति के विभाजन की मांग कर सकता है। क्या यह उपबंध परिवार की शांति को बनाए रखने में सहायक है? पिता की मृत्यु के पश्चात् पुत्री, पुत्र पूर्व मृतक पुत्र की विधवा इत्यादि, सभी खंड 115 में विहित उपबंधों के अनुसार संपत्ति के विभाजन की मांग को लेकर न्यायालय में जायेंगे। यह एकदम इस्लामी कानून की तरह होगा जो हिन्दू आदर्शों के नितांत विपरीत है और इसे इस तरह से विधेयक में शामिल नहीं किया जाना चाहिए।

यह दावा किया गया है कि इस संहिता से वैचारिक मतभेद दूर होंगे और इस व्यापक विधेयक से हिंदू धर्म की समस्त व्याधियों का हल निकल जाएगा। क्या विधेयक में कुछ ऐसी त्रुटियां नहीं हैं जिन्हें दूर किए बिना यह विधेयक हिन्दू समाज के लिए घातक सिद्ध होगा?

खंड 88 और 89 में आपने पवित्र दायित्व के सिद्धांत को रद्द कर दिया है। खंड 89 के अधीन परिवार के सदस्यों को संयुक्त परिवार के दायित्व का भुगतान करना पड़ेगा। पिता की मृत्यु हो जाने पर आपने क्या व्यवस्था की है? दाह-संस्कार तथा श्राद्ध इत्यादि और ऐसे अवसरों पर किए जाने वाले दान-पुण्य की व्यवस्था कौन करेगा? क्या इस

विधेयक के कानून बन जाने पर विभिन्न उत्तराधिकारियों के बीच झगड़े नहीं होंगे। पिता की मृत्यु होने पर पुत्र और पुत्रियां पिता की सम्पत्ति बटोरने में इतने तल्लीन होंगे कि वे अपने श्राद्ध कर्म को भी, जो प्रत्येक सम्माननीय परिवार के लिए अनिवार्य है, भूल जाएंगे। इस विधेयक में इस संबंध में कोई व्यवस्था नहीं है।

क्या विधेयक में हिन्दू संयुक्त परिवार के लिए कोई व्यवस्था की गई है? हिन्दू विधि में सहदायिकी सम्पत्ति और संयुक्त सम्पत्ति के बीच विभेद किया गया है। भारत में कारोबार करने वाले परिवारों की संख्या कितनी है? क्या इस संबंध में विधेयक में कहीं भी कोई व्यवस्था की गई है? संयुक्त परिवार के व्यवसाय में उत्तराधिकार की क्या स्थिति होगी?

आप इस विधेयक के व्यापक होने का दावा करते हैं। क्या आपने इसमें दत्तक पुत्र के लिए कोई व्यवस्था की है? खंड 52 से 54 के अधीन प्रत्येक हिन्दू पुरुष 18 वर्ष का होने पर अपनी पत्नी की सहमति से पुत्र गोद लेने का अधिकारी है। यदि गोद लेने के पश्चात् पिता का अपना पुत्र हो जाता है तो पिता की सम्पत्ति पर पुत्र का क्या अधिकार होगा? क्या आपके विधेयक में इस समस्या का कोई हल है? हमारे हिन्दू संहिताकारों अथवा स्मृतिकारों ने देश के विभिन्न भागों के लिए पर्याप्त व्यवस्था की है। पिता द्वारा पुत्र गोद लिए जाने के बाद पैदा हुए उसके अपने पुत्र की स्थिति क्या होगी? "दायभाग" व्यवस्था के अंतर्गत उसे आधा हिस्सा तथा पिताक्षर व्यवस्था के अंतर्गत उसे एक-तिहाई हिस्सा मिलेगा। बाम्बे प्रेसीडेंसी में उसे एक चौथाई हिस्सा मिलेगा। क्या आपने इस विधेयक में ऐसी कोई व्यवस्था की है? यदि नहीं, तो क्या इससे अव्यवस्था पैदा नहीं होगी? क्या आपने संयुक्त परिवार की सम्पत्ति के विभाजन की तथा कई अन्य बातों की जिन्हें इसमें शामिल किया जाना अनिवार्य है और जो हिन्दू विधि की दृष्टि से जटिल हैं, इसमें व्यवस्था की है? इसलिए, मेरा निवेदन है कि इससे बहुत जटिलतायें और समस्यायें पैदा होंगी जिनका समाधान करना बहुत कठिन होगा।

फिर यह प्रश्न पैदा होता है कि ऐसे पुत्र के, जिसका संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में कोई भाग नहीं है, क्या अधिकार और दायित्व होंगे? वर्तमान परिस्थितियों में जन्मजात पुत्र का सम्पत्ति पर अधिकार होता है और इस आधार पर वह अपने भरण-पोषण, शिक्षा तथा अन्य वस्तुओं की मांग कर सकता है। आप कह सकते हैं कि विधेयक के खंड 126 और 128 के अधीन यह व्यवस्था की गई है कि प्रत्येक पति पर अपने पत्नी के भरण-पोषण का दायित्व होगा और पत्नी कुछ विशेष आधारों पर जैसे कोढ़ की बीमारी इत्यादि होने पर पृथक रूप से भरण-पोषण का दावा कर सकती है। यह पुनः मुकद्मेबाजी और वकीलों की समृद्धि के लिए द्वार खोलना है। आप कहेंगे कि खंड 128 में आपने

बच्चों और बूढ़े मां-बाप के भरण-पोषण की व्यवस्था की है। परन्तु क्या खंड 126 और 128 के अधीन की गई भरण-पोषण की व्यवस्था से उनके अधिकारों को प्रभावी सुरक्षा मिलती है। वस्तुतः ऐसा नहीं है। उनकी स्थिति वर्तमान हिन्दू विधि के अधीन स्थिति से भी खराब हो जाएगी। वर्तमान हिन्दू विधि के अनुसार एक पुत्र को परिवार की सम्पत्ति से अपने भरण-पोषण का अधिकार प्राप्त है और यदि परिवार का कर्त्ता, पिता अथवा प्रबंधक इतना दायित्वहीन है कि वह उसके हितों की अवहेलना करता है तो न्यायालय में इसके लिए समाधान है। वह सम्पत्ति के विभाजक की मांग भी कर सकता है। हिन्दू विधि का प्रत्येक विद्यार्थी यह जानता है कि यद्यपि अव्यस्क के सम्पत्ति के विभाजन संबंधी अधिकार अत्यंत सीमित है तो भी यदि पिता, प्रबंधक अथवा परिवार का कर्त्ता अव्यस्क व्यक्ति के हितों के विपरीत अथवा उनकी उपेक्षा करके अपने अधिकारों का दुरुपयोग करता है तो वह अपने सम्पत्ति के विभाजन के अधिकार के लिए न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकता है यह एक बहुमूल्य अधिकार है जिसे आप इस विधेयक द्वारा छीन रहे हैं।

इसी तरह, आप कहते हैं कि विधेयक के खंड 126 में पत्नी के भरण-पोषण की और खंड 128 में बच्चों तथा बूढ़े माता-पिता के भरण-पोषण की व्यवस्था की गई है। यदि पति एकदम कंगाल है और वह अपना भी भरण-पोषण नहीं कर सकता है, तो वह अपनी पत्नी का भरण-पोषण किस प्रकार करेगा? अतः पत्नी को दिया गया यह अधिकार एंक भ्रम और छलावा है। वर्तमान हिन्दू कानून में प्रत्येक पत्नी और स्त्री को भरण-पोषण और आवास का अधिकार है और यदि प्रबंधक अथवा कर्त्ता अपने अधिकार का दुरुपयोग करता है तो वह न्यायालय के जरिए अपने अधिकार को लागू करवा सकती है।

यदि आप एक कानून बना कर सम्पत्ति की अवधारणा ही समाप्त कर देंगे और प्रत्येक सम्पत्ति का समाजीकरण अथवा राष्ट्रीयकरण कर देंगे तो स्थिति बिल्कुल बदल जाएगी। किन्तु आप संयुक्त परिवार प्रथा को बनाए रखकर अव्यस्कों, विधवाओं और स्त्रियों को उन्हें हिन्दू विधि के अधीन प्रदत्त महत्वपूर्ण अधिकारों से वंचित कर रहे हैं। समानता के नाम पर, जो एक भ्रम और छलावा है, आप एक ऐसी गलती करने जा रहे हैं जिसका समाधान करना बहुत कठिन होगा। अतः मेरा यह विनम्र अनुरोध है कि प्रत्येक दृष्टिकोण से यह विधान न केवल हिन्दू विधि के सर्वमान्य सिद्धांतों के प्रतिकूल है बल्कि इसके फलस्वरूप हिन्दू समाज में ऐसी भ्रांति भी पैदा हो सकती है जिसका समाधान करना अत्यंत कठिन होगा।

महोदय, अपना भाषण समाप्त करने से पूर्व, मैं अपनी 2 अप्रैल की तथा आज की बातों को संक्षेप में दोहराऊंगा। मैंने कहा था कि हिन्दू विधि को संहिताबद्ध करने की कोई आवश्यकता अथवा वांछनीयता नहीं है। देश के न्यायविदों को भी इसकी

आवश्यकता नहीं है। इसके प्रशासन में ऐसा गंभीर टकराव भी नहीं पैदा हुआ है जिसमें विधायिका को हस्तक्षेप करने की आवश्यकता हो। जनता की ओर से भी इस प्रकार का विधेयक लाने की कोई मांग नहीं की गई है। राव समिति ने जिस साक्ष्य को आधार माना है उसका विश्लेषण मैंने अपने 2 अप्रैल के भाषण में किया था और मैंने बताया था कि राव समिति द्वारा रिकार्ड किए गए साक्ष्य में अधिसंख्य लोगों का मत ऐसे परिवर्तन और बदलाव के विरुद्ध था जिन्हें राव समिति ने विधेयक में शामिल किया है। तदन्तर उन्हें प्रवर समिति द्वारा पारित रूप में हिन्दू संहिता विधेयक में स्थान देकर स्थिति को और भी गंभीर बना दिया गया है। वस्तुतः प्रत्येक मुद्दे पर चाहे वह तलाक का मुद्दा हो या पारम्परिक अथवा कानूनी विवाह का हो, अथवा खंड 21 के अंतर्गत अपनी इच्छा होने पर पारम्परिक विवाह को कानूनी विवाह में बदलने का हो। प्रत्येक जगह इसका भारी विरोध हुआ था। संयुक्त परिवार प्रथा को समाप्त किए जाने का समाज के प्रत्येक वर्ग ने भारी विरोध किया था। अतः अधिकांश जनमत प्रत्येक महत्वपूर्ण पहलू पर राव समिति की सिफारिशों के विरुद्ध था। आज भी देश के विभिन्न वर्गों से, न्यायविदों, वकील-परिषदों तथा अन्य नागरिकों द्वारा व्यक्त किए गए मत से यह स्पष्ट है कि वर्तमान स्थिति में इस प्रकार के अनिष्टकारी विधेयक की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। अतः जैसा कि मैं पहले भी यह कह चुका हूं और आज भी पुनः वह बात दोहरा रहा हूं कि हिन्दू विधि को संहिताबद्ध करने की कोई आवश्यकता अथवा वांछनीयता नहीं है।

मैं बता चुका हूं कि विधेयक में दिए गए विवाह संबंधी उपबंध वस्तुतः विवाह के लिए उपयुक्त नहीं हैं। पारम्परिक विवाह की आड़ में हिन्दू संहिता में इस्लाम और ईसाई विवाह के सिद्धांतों को ठूंसा जा रहा है। यह सरासर एक धोखा है। इस प्रकार का विवाह, जिसे एक पक्ष की इच्छा पर कानूनी विवाह में बदला जा सके किसी भी हिन्दू के लिए लज्जाजनक बात होगी जिसे सहन नहीं किया जा सकता है।

*सभा में और बाहर भी यह तर्क बार-बार दोहराया जाता है कि यह विधेयक केवल समर्थनकारी अथवा अनुज्ञात्मक विधेयक है, मैं इस तर्क का उत्तर दे चुका हूं। यदि ऐसा है तो इन सारे खंडों को हटाकर विधेयक में केवल एक खंड रख दिया जाये कि प्रत्येक व्यक्ति किसी भी व्यक्ति से विवाह करने में स्वतंत्र है। इससे सारी जरूरतें पूरी हो जायेंगी। आप पारम्परिक विवाह का ढोंग क्यों करते हैं? पारंपरिक विवाह का जो स्वरूप आपने विधेयक में रखा है वह प्राचीन काल से चली आ रही इस प्रथा का मजाक उड़ाना है। जन साधारण को धोखा देने, उन्हें यह विश्वास दिलाने के लिए कि हम स्थापित

---

*श्री एस॰ नागप्पा के इस कथन कि यह विधेयक पारम्परिक विवाहों को नहीं रोकता है, पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए।

रीति-रिवाजों का उल्लंघन नहीं कर रहे हैं इसका गलत नाम रख दिया गया है। इसकी आड़ में हिन्दू समाज के साथ एक धोखा किया जा रहा है। कोई भी आत्माभिमानी हिन्दू ऐसी स्थिति को सहन नहीं कर सकता है।

यह अच्छा होगा कि इस विधेयक से खंड 5 से 52 तक सारे खंड हटा दिए जायें। ये सभी खंड हिन्दू आदर्शों, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू सभ्यता के प्रतिकूल हैं। विवाह संबंधी उपबंधों के संबंध में मेरा यह अनुरोध है। तलाक संबंधी खंडों के संबंध में मैं पहले ही कह चुका हूं। जहां तक दत्तक-ग्रहण का प्रश्न है, मैं पहले ही बता चुका हूं और आज भी यह बात दोहरा रहा हूं कि हिन्दू विधि की अवधारणा है और यदि आधुनिक युग के प्रतिपादी विचारों के कारण आप दत्तक-ग्रहण की अवधारणा से सहमत नहीं हैं, तो दत्तक-ग्रहण संबंधी सारे खंड हटा लीजिए लेकिन जिस प्रकार के खंड आपने विधेयक में रखे हैं उन्हें रखना उचित नहीं है। विधेयक के उपबंधों के अनुसार किसी भी हिन्दू को पुत्र बनाकर गोद लिया जा सकता है। इसमें गोत्र, जाति, पद इत्यादि की कोई सीमा नहीं है, यह सब गोद लेने वाले व्यक्ति के ऊपर छोड़ दिया गया है कि वह किसी भी व्यक्ति को गोद ले। जो हिन्दू कानून संहिता के नियमों से परिचित हैं वे जानते हैं कि परिवार में एक अनजान व्यक्ति को गोद लेने से मुकद्दमेबाजी की शुरुआत होती है। इस संबंध में सुस्थापित प्रथाएं तथा रीति रिवाज हैं जिन्हें न्यायालयों के निर्णयों द्वारा मान्यता और पुष्टि प्राप्त हुई है जिनके अनुसार उसी गोत्र के व्यक्ति को ही गोद लिया जा सकता है। इन सब परम्पराओं और रीति-रिवाजों की उपेक्षा कर दी गई है। इस बात पर तनिक भी विचार नहीं किया गया है कि इसके कितने भंयकर परिणाम होंगे। इस प्रकार के उपबंधों के जो भयावह परिणाम होंगे उनकी कल्पना कर दिल दहल उठता है। इस प्रकार के दत्तक-ग्रहण की व्यवस्था करने से इस व्यवस्था को पूर्णतः समाप्त कर देना कहीं अच्छा है। मैं पूरे दायित्व के साथ यह बात कह सकता हूं कि विधेयक के समर्थकों के मन में हिन्दू संस्कृति तथा उससे संबंधित प्रत्येक विचारधारा के प्रति आंतरिक घृणा का भाव था और इसी कारण से दत्तक-ग्रहण संबंधी हिन्दू संहिताकारों के मन्तव्य को जाने अथवा उसका मूल्यांकन किए बिना इस प्रकार के उपबंध इस विधेयक में शामिल किए गए हैं। हिन्दू विधि के अधीन दत्तक ग्रहण का एकमात्र प्रयोजन है कि व्यक्ति की आध्यात्मिक आवश्यकताओं को पूरा करने और उसकी मृत्यु पर दान-पुण्य करने हेतु उसका एक पुत्र हो। दत्तक-ग्रहण की अवधारणा का एकमात्र यही प्रयोजन है। किन्तु आप ऐसा उपबंध करके, जिसके अधीन किसी को भी गोद लिया जा सकता है, इस अवधारणा के मूल पर ही कुठाराघात कर रहे हैं। इससे अच्छा है कि आप दत्तक-ग्रहण की प्रथा ही समाप्त कर दें। कई समुदायों में यह प्रथा नहीं है। यदि आप इसके इतने विरोधी हैं

तो इसे जारी रखने से लाभ ही क्या है? हमें दत्तक-ग्रहण के सिद्धांत का मखोल तो नहीं उड़ाना चाहिए।

महोदय, मेरा विनम्र निवेदन है कि इस विधेयक का प्रत्येक उपबंध हिन्दू धर्म के सिद्धांतों के विपरीत है और इसलिए वह किसी भी हिन्दू को मान्य नहीं हो सकता। मेरे विचार से यह विधेयक इसके समर्थकों का हिन्दुओं को उनकी जन्मभूमि से उखाड़ कर उन्हें अरब अथवा जेरूसलम में ढकेलने का, अर्थात उन पर बलात् इस्लाम और ईसाई धर्म के सिद्धांत थोपने का प्रयास है। इस प्रकार की हिन्दू संहिता की क्या आवश्यकता है? आप हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 के उपबंधों को सारे हिन्दू समुदाय पर लागू क्यों नहीं कर देते? इस प्रकार के सरल और सुविधाजनक तरीके से सारे हिन्दू समाज के लिए एक सी व्यवस्था कायम हो सकेगी।

अपना भाषण समाप्त करने के पूर्व एक चेतावनी देना मेरा पुनीत कर्त्तव्य है। आप यह अच्छी तरह जानते हैं कि हिन्दू विधि को किसी बाहरी शक्ति ने नहीं बनाया है अथवा उसे ऊपर से थोपा नहीं गया है। यह किसी राजा अथवा विधान सभा के आदेशों का परिणाम नहीं है। यह इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। इसका विकास कई शताब्दियों में स्वाभाविक रूप से हुआ है। यह विधि स्मृतियों और निबंधकारों की पुस्तकों से नहीं आई है। उनमें केवल हिन्दू विधि के सर्वमान्य सिद्धांतों का विवेचन और उनकी व्याख्या की गई है। उन पुस्तकों में लिए गए सिद्धांतों से हिन्दू समाज का संचालन अभी नहीं हुआ। हिन्दू समाज को संचालित करने की मूल शक्ति समाज के विभिन्न वर्गों को प्रशासित करने वाली निरंतर विकसित होने वाली परम्पराओं और रीति-रिवाजों में रही है। यह विकास स्वतः हुआ था। वस्तुतः, यदि यथार्थवादी दृष्टि से देखा जाये तो हिन्दू समाज एक ऐसी कार्यरत विधायिका है जिसके सदस्य इस विधायिका की तरह कुछ चुने हुए व्यक्ति नहीं अपितु पूरा हिन्दू समाज है और जिसका सत्र निरंतर चल रहा है जो विधि में आवश्यकतानुसार संशोधन और परिवर्तन करता रहता है। हिन्दू विधि की यह प्रमुख विशेषता है। आप ऐसी विधि को जिसमें समाज में निरंतर होने वाली परिवर्तनशीलता और लोच है उसे कलुषित करना चाहते हैं। महोदय, सभा का एक विनम्र सदस्य होने की हैसियत से मैं यह कहना अपना कर्त्तव्य समझता हूं कि आपको इस विधि में फेरबदल करने में बहुत सावधानी बरतनी चाहिए। यह विधि शताब्दियों के विकास के फलस्वरूप अस्तित्व में आई है। शताब्दियों से चली आई इसकी परम्पराओं, रीतिरिवाजों और प्रथाओं में फेर-बदल करने के पूर्व आपको यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि भारत केवल इलाहाबाद और दिल्ली जैसे नगरों में नहीं रहता है, वास्तविक भारत पांच लाख गांवों में रहता है। हमारे ग्रामीणों का जीवन उनके समाज के ढांचे से इस कदर ओतप्रोत है कि इस विधेयक के द्वारा यदि आप शताब्दियों से प्रचलित रीति-रिवाजों और प्रथाओं को

जिनको वे मानते रहे हैं, से उन्हें वंचित करने का प्रयास करेंगे तथा उनमें संशोधन करेंगे तो वे इसका तथाशक्ति विरोध करेंगे। इस विधेयक द्वारा समाज को कोई लाभ नहीं पहुंचेगा अपितु कुछ असंतुष्ट व्यक्तियों को इस नए विधान से लाभ उठाने का अवसर अवश्य प्राप्त हो जाएगा।

*मैंने सभा के किसी सदस्य का उल्लेख नहीं किया है माननीय सदस्य को विरोधी पक्ष के विचारों को भी सुनने की सहनशीलता होनी चाहिए। मेरे कथन का तात्पर्य यह है कि आप इस विधान द्वारा हिन्दू विधि के स्वाभाविक विकास पर रोक नहीं लगा सकते हैं। इस विधेयक को पारित करके आप हिन्दू विधि की विशेषताओं में वृद्धि करने के स्थान पर इसे विकृत कर रहे हैं। यह विधेयक अपने स्वरूप और विषय की दृष्टि से इतना अनिष्टकारी है कि इससे किसी परकार के रचनात्मक लाभ होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। सभा के नेता तथा माननीय प्रधानमंत्री ने हाल ही में कहा था कि हमें एक औपचारिक अथवा अनौपचारिक समिति बनानी चाहिए जिससे कि पुरातन पंथी और नवीनता-वादी वर्गों के बीच समझौता हो सके। मेरा मत है कि जिस भावना और विचार से इस विधेयक को प्रस्तुत किया गया है वह हिन्दू आदर्शों के नितांत विपरीत और प्रतिकूल है। इस कारण इस विधेयक के प्रति रचनात्मक दृष्टिकोण लाने के हमारे हार्दिक प्रयासों के बावजूद भी ऐसा करना संभव नहीं होगा। सरकार के लिए सर्वोत्तम मार्ग यह है कि वह इस विधेयक को अभी पारित न करें अपितु जब तक व्यस्क मताधिकार के आधार पर ऐसी सभा का जिसे हिन्दू समाज के संपूर्ण ढांचे में फेरबदल करने का अधिकार प्राप्त हो, चुनाव न हो, तब तक प्रतीक्षा करें। मेरा निवेदन है कि जब तक सभा को ऐसा अधिकार प्राप्त न हो, तब तक इस सभा द्वारा हिन्दू समाज के लिए ऐसे महत्वपूर्ण विधेयक पर विचार करने के उसके औचित्य को मैं चुनौती देता हूं।

महोदय, इन शब्दों के साथ मैं अपना भाषण समाप्त करता हूं।

---

*डा० पम्मोहन दास के इस कथन पर कि "क्या वह इस सभा के कुछ सदस्यों पर आक्षेप नहीं कर रहे हैं। उन्होंने एक ही बात को कई बार दोहराया है।" प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए।

2

राज्यों के पुनर्गठन के संबंध में*

*हम राज्य पुनर्गठन आयोग के प्रतिवेदन पर काफी समय से विचार कर रहे हैं। इस बात के बावजूद कि राज्य पुनर्गठन आयोग की भूरि-भूरि प्रशंसा हुई है और उसे बहुत साधुवाद प्राप्त हुआ है, मैं उसका समर्थन नहीं कर सकता। इस प्रतिवेदन से सारे देश में जो विवाद, कड़वाहटें और विद्वेष की भावना फैली है, और सभा में भी जो प्रतिक्रिया हुई है, उससे स्पष्ट है कि ऐसी गंभीर समस्या पर विचार करने के लिए अभी उपयुक्त वातावरण नहीं बना है। देश की एकता और सुरक्षा के व्यापक प्रश्न को देखते हुए इस समस्या पर अभी विचार करना उचित नहीं होगा अतः इसे स्थगित किया जाना चाहिये; क्योंकि मेरे ख्याल से जब राजा जी जैसे वरिष्ठ राजनेता के मत की उपेक्षा की गयी तब भला मेरे जैसे सामान्य और दुर्बल व्यक्ति की आवाज को कौन सुनेगा? इसलिये देश के व्यापक हितों को ध्यान में रखते हुये हमें यह देखना है कि हम भारत की एकता और सुरक्षा की रक्षा किस प्रकार कर सकते हैं जो प्रत्येक देशभक्त और सांसद का परम कर्तव्य है।

मेरा सुझाव है कि राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिशों को लागू करने के लिये जो विधेयक सभा के सम्मुख प्रस्तुत किया जाना है, उसमें कुछ ऐसी बातें हैं जिन्हें अनदेखा नहीं किया जाना चाहिये। संविधान के उन उपबंधों को जिनमें केन्द्र को इसके सभी घटक एककों की तुलना में सर्वोच्च शक्तियां दी गयी हैं उनको सुरक्षित रखा जाना चाहिये तथा उन्हें संसद के अधिकारों तथा संशोधन-शक्तियों के परे रखा जाना चाहिये। यही एक मात्र तरीका है जिससे हम देश की सुरक्षा और एकता को अक्षुण रख सकते हैं। मेरा तात्पर्य संविधान के अनुच्छेद 368 से है, जिसके अधीन संविधान, जो देश की सर्वोच्च संघात्मक विधि है, के किसी भी प्रावधान में उपयुक्त संशोधन अथवा फेरबदल इस प्रकार किया जाये कि जिनसे संविधान के उन उपबंधों को संसद के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखा जाये जिनमें संघ के घटक एककों पर केन्द्र की प्रभुसत्ता का प्रावधान है। अनुच्छेद 248 के

---

*लोक सभा वाद विवाद, 20 दिसम्बर, 1955 स्तम्भ 3330—3338

द्वारा केन्द्र को अवशिष्ट विधायिका शक्तियां दी गयी है। और संविधान के भाग 18 में शामिल अनुच्छेद 352 से 360 में आपातकालीन स्थिति में केन्द्र को अधिभावी शक्तियां दी गयी है। इन्हें संसद के संशोधनात्मक अधिकार और शक्तियों के बाहर रखा जाना चाहिये जिससे भविष्य में भारत की एकता और अखंडता पर किसी भी प्रकार की आंच नहीं आने पाये। यहां तक कि उपस्थित और मतदान करने वाले दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत से और सभा कुल सदस्यों के बहुमत से भी संविधान के उन पावन एवं पवित्र उपबंधों में छेड़छाड़ नहीं करनी चाहिये जिनसे घटक एककों पर केन्द्र की प्रभुसत्ता कायम रहती है। भारत की एकता और सुरक्षा के लिये कम से कम इतनी व्यवस्था अत्यंत आवश्यक है। मैं आशा करता हूं कि गृह मंत्री और विधि मंत्री इस प्रकार की उपयुक्त व्यवस्था को शामिल करने पर विचार करेंगे।

दूसरा रक्षात्मक उपाय इस प्रतिवेदन के भाग 4 में दिया गया उपबंध है, जिसके अनुसार भाषायी अल्पसंख्यक समुदायों की सुरक्षा की व्यवस्था की गयी है, इसे कार्य पालिका के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखा जाना चाहिये, अन्यथा यह सुरक्षा केवल कागज में ही रखी रह जायेगी। इस प्रयोजन के लिये निर्वाचन आयोग की तरह का एक स्थायी आयोग बनाना चाहिये और इसे सतर्क रहकर भाषायी अल्पसंख्यकों की सुरक्षा सुनिश्चित करनी चाहिये। ऐसा संविधान में उपयुक्त संशोधन के द्वारा ही संभव है।

इस जटिल समस्या पर मेरे यह सामान्य विचार हैं। अतः अब मैं अपने राज्य अजमेर पर आता हूं। दुर्भाग्य से मेरे राज्य के प्रति इस उच्चशक्ति प्राप्त आयोग ने उपेक्षापूर्ण व्यवहार किया है। अजमेर के महत्व और विशालता की पूर्ण रूप से अवहेलना की गयी है। मैं आपके माध्यम से सभा का ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूं कि इस छोटे से राज्य, अजमेर जिसकी जनसंख्या 7 लाख तथा क्षेत्रफल 2400 वर्ग मील है की क्या समस्यायें और शिकायतें हैं। संघ के अन्य घटक एककों से इसकी समस्यायें एकदम अलग प्रकार की हैं। भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा भाषायी दृष्टि से यह राजस्थान का एक भाग है। लेकिन इस सबके बावजूद यह भी इतिहास का एक निर्विवाद तथ्य है कि अजमेर राजनैतिक अथवा प्रशासनिक रूप से राजस्थान से एकदम पृथक रहा है। राजस्थान मई, 1949 से ही अस्तित्व में आया है परन्तु इससे भी पहले इतिहास के प्रारम्भ काल से आज तक अजमेर कभी भी प्रशासनिक अथवा राजनैतिक रूप से वर्तमान संयुक्त राजस्थान के किसी भाग का अंग नहीं रहा है। इतिहास हमें बताता है कि बहुत प्राचीन समय से ही अजमेर राष्ट्रव्यापी ख्याति और महत्व का स्थान रहा है। पुष्कर झील तथा निकटवर्ती पर्वत श्रृखलाओं ने, जहां विश्व के रचयिता ब्रह्मा ने तपस्या की थी, इस सुन्दर स्थान को भारतव्यापी धार्मिक महत्व प्रदान किया है। देश के प्रत्येक भाग से वर्ष भर, विशेषतः कार्तिक के पवित्र महीने में इस पवित्र झील पर स्नान करने के लिये

लाखों तीर्थयात्री आते हैं। किवदंती है कि सम्पूर्ण भारत के तीर्थों की यात्रा करने वाले इन तीर्थ यात्रियों को तीर्थाटन का पुण्य तब तक प्राप्त नहीं होता है जब तक वे पुष्कर झील में अन्तिम बार स्नान नहीं कर लेते हैं। मुसलमान फकीर ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती अपने जीवन के महत्वपूर्ण भाग में अजमेर में रहे थे और यहीं उनकी मृत्यु हुइ। ख्वाजा शरीफ की दरगाह पर न केवल भारत अथवा पाकिस्तान के मुसलमान आते हैं अपितु सारे विश्व से लाखों तीर्थ यात्री यहां आते हैं। अजमेर जैन धर्म का भी महत्वपूर्ण तीर्थ है। आर्य समाज के जन्मदाता और महान समाज सुधारक स्वामी दयानन्द की मृत्यु भी अजमेर में ही हुई थी। इस प्रकार अजमेर, भारत की विभिन्न संस्कृतियों की संगम स्थली है। अतः इसका स्वरूप सर्वदेशीय है। समस्त राजस्थान में यह ईसाई धर्म-प्रेसबटेरियन, प्रोटेस्टेंट तथा रोमन कैथोलिक-सभी सम्प्रदायों का सबसे बड़ा केन्द्र है। इतना ही नहीं भारतीय इतिहास से भी इसका महत्व प्रगट होता है। आरम्भिक समय से महाराजा पृथ्वीराज के समय तक, जो भारत का अन्तिम हिन्दू राजा था, जिसने मोहम्मद गोरी को कई बार पराजित किया था तथा जिसे कन्नौज के राजा जयचंद के विश्वासघात के कारण पराजित होना पड़ा था, अजमेर ने स्थानीय इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं में ही नहीं अपितु जोधपुर, उदयपुर जैसे राजस्थान के पड़ोसी राज्यों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। राजस्थान के कई राजाओं की अजमेर में बड़ी-बड़ी कोठियां हैं जहां वे अपनी राजनिष्ठा व्यक्त करने के लिये अक्सर नियमित रूप से जाया करते थे। यह स्थान मुगलों के शासन-काल और अंग्रेजों के शासन काल में भी सरकारों की शक्ति का केन्द्र रहा है। यही स्थान स्वतंत्रता आन्दोलन का भी केन्द्र रहा है और यहीं से सारे राजस्थान तथा मध्य भारत में स्वतंत्रता संग्राम का बिगुल बजाया गया था।

1949 में राजस्थान की विभिन्न रियासतों का भविष्य अधर में लटका हुआ था। उस समय यह सोचा गया कि राजस्थान की रियासतों तथा अजमेर को मिला लिया जाये और नवीन राजस्थान के निर्माण में अजमेर की अहम भूमिका हो। अपने निर्वाचन क्षेत्र की ओर से 17 मार्च, 1949 को मैंने अपनी पूरी शक्ति से लोक सभा में यह मांग रखी थी। मैंने तत्कालीन गृहमंत्री से भी यह अनुरोध किया था कि अजमेर को राजस्थान के अन्य एककों के साथ मिला लिया जाये जिससे कि वह अतीत की तरह पुनर्निर्माण में प्रमुख भूमिका निभा सके। तत्कालीन गृहमंत्री ने कहा था कि राजस्थान कभी भी एक राज्य नहीं रहा है अब हम पहली बार ऐसा प्रयोग करने जा रहे हैं। हम इसके परिणाम देखना चाहते हैं। मैं यह भी उल्लेख करना चाहता हूं कि राजस्थान प्रान्तीय कांग्रेस समिति ने भी भारी बहुमत से यह प्रस्ताव पारित किया था कि अजमेर को राजस्थान में मिला लिया जाये तथा उसे राजस्थान की राजधानी बनाया जाये। इस आधार पर मैंने यह मांग रखी थी। इस मांग को भारत सरकार ने क्यों ठुकरा दिया इसे वे ही जानते हैं। हमें यह आशंका है कि भारत

सरकार जयपुर को राजधानी बनाने का वचन जयपुर के महाराजा को पहले ही दे चुकी थी इसलिये अजमेर का विलय जनता की घोषित इच्छा के बावजूद नहीं हुआ था। अब राजस्थान का पूरा नक्शा बन चुका है। राजधानी निश्चित हो चुकी है, उच्च न्यायालय की शाखायें स्थापित हो चुकी हैं, अन्य कार्यालय भी विभिन्न स्थानों पर खुल गये हैं। अब केन्द्रीय सरकार का इरादा क्या है? आयोग ने इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार क्यों नहीं किया है?

मेरा विनम्र अनुरोध है कि अजमेर की जनता आज भी राजस्थान के साथ अजमेर के विलय का स्वागत करती है केवल शर्त यह है कि अजमेर को राजस्थान की राजधानी बनाया जाये। उनकी यह मांग ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा सुनिश्चित तथ्यों के आधार पर बिल्कुल वैध है। अजमेर राजस्थान के मध्य में स्थित है तथा राज्य के प्रत्येक भाग से वहां सरलता पूर्वक पहुंचा जा सकता है। अजमेर प्रान्तीय कांग्रेस समिति, विधान मंडल की अजमेर कांग्रेस पार्टी तथा ऐसी ही अन्य संस्थाओं ने एकमत से यह कहा था कि जब तक अजमेर को राजस्थान की राजधानी नहीं बनाया जायेगा वह राजस्थान में विलय के लिये तैयार नहीं है। इसके कई कारण हैं।

राज्य पुनर्गठन आयोग ने अजमेर का राजस्थान में विलय करने की सिफारिश किन कारणों से की है? पैरा 265 में यह कहा गया है कि अजमेर सहित भाग-ग के सभी राज्य आर्थिक रूप से परतंत्र, वित्तीय रूप से दुर्बल तथा राजनैतिक और प्रशासनिक रूप से अस्थिर हैं। हमें इस बात की जांच करनी चाहिये। राजस्थान के संबंध में तथ्य क्या हैं? क्या राजस्थान आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर और वित्तीय रूप से सुदृढ़ है? ऐसा नहीं है। 1955-56 में प्रस्तुत किये गये पिछले बजट में राजस्थान की आय रु० 22,30,00,000 तथा व्यय 24,69,00,000 रु० दिखायी गयी थी। इस प्रकार 239 लाख रु० का घाटा दिखाया गया था। आबकारी से होने वाली आय 275 लाख रु० कम हो जाने पर यह घाटा बढ़कर 6 करोड़ रु० हो जायेगा। इसलिये राजस्थान इकाई को आर्थिक रूप से संतुलित तथा वित्तीय रूप से सुदृढ़ नहीं कहा जा सकता है।

जहां तक प्रशासनिक और राजनैतिक स्थायित्व का प्रश्न है, गृह मंत्रालय को अपने पुराने रिकार्ड देखकर स्वयं ही तथ्यों का पता लगा लेना चाहिये। क्या भारत में कोई भी राज्य ऐसा है जो राजस्थान की तरह अस्थिर है? कृपया मुझे बोलने के लिये कुछ और समय दिया जाये क्योंकि अजमेर की ओर से बोलने वाला मैं प्रथम वक्ता हूं।

*** *** ***

1949 से और इसके पश्चात् पिछले पांच वर्षों में विधान सभा में दल के पांच या छः नेता बदले हैं। श्री हीरालाल शास्त्री, श्री जयनारायण व्यास, श्री पालीवाल पुनः श्री व्यास

और अब श्री सुखाड़िया। अब आप अजमेर की राजनैतिक स्थिरता पर विचार करें। अप्रैल 1952 से हमारे यहां केवल वही मंत्रिमंडल चल रहा है। मैंने केवल राजस्थान में नेतृत्व परिवर्तन का उल्लेख किया है, दूसरे मंत्रियों के बारे में जितना कम कहा जाये उतना ही अच्छा होगा। राजस्थान आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर इकाई नहीं है तथा वहां की आर्थिक स्थिति भी संतुलित नहीं है। वहां राजनैतिक और प्रशासनिक स्थायित्व केवल सिद्धान्त की बात है। यदि हम इन आधारों पर अजमेर सहित भाग "ग" राज्यों को समाप्त करने की बात करें तो इस आधार पर राजस्थान को भी समाप्त हो जाना चाहिये।

हमने राज्य पुनर्गठन आयोग के सदस्यों को भी बताया था कि देश के हित में राजस्थान को दो भागों में विभाजित करना उचित होगा। दक्षिण भाग को एक पृथक इकाई बनाकर अजमेर को उसकी राजधानी बनाया जाये। उत्तरी भाग दक्षिणी भाग से एकदम स्वतंत्र रहेगा। लेकिन इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया गया। आयोग ने कहा है कि भाग-ग के राज्यों में विकास कार्यों की उपेक्षा हुई है। यह भी नितांत असत्य है। अभी हाल ही में सामुदायिक परियोजना प्रशासन के एक वरिष्ठ अधिकारी ने अजमेर का दौरा किया था। उस वरिष्ठ अधिकारी ने अपना जो मत प्रगट किया उसकी ओर मैं माननीय सदस्यों का ध्यान आकृर्षित करना चाहता हूं। उसने कहा था कि अजमेर की सामुदायिक परियोजनाओं तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा प्रखंडों में सर्वोत्तम काम हुआ है। उसने इस कार्य को वास्तव में असाधारण कहा है। उसने कहा है यदि राजनैतिक और प्रशासनिक पहलुओं को छोड़ दिया जाये तो अपेक्षाकृत छोटे एकक गहन विकास कार्यों के लिये वरदान स्वरूप हैं। इसी वरिष्ठ अधिकारी के कथनानुसार वहां की बुनियादी शिक्षा संस्थायें भारत में सर्वोत्तम हैं। अभी हाल ही में संयुक्त राष्ट्र संघ के एक प्रतिनिधि ने अजमेर राज्य का दौरा किया। उसने वहां के बन्दीगृहों का निरीक्षण करने के पश्चात् जो प्रमाणपत्र दिया वह न केवल अजमेर अपितु समस्त देश के लिये गर्व की बात है। उसने कहा है कि अजमेर के बन्दीगृह में कैन्टीन की व्यवस्था जो पूरी तरह कैदियों के हाथों में है तथा कैदियों द्वारा बिना प्रहरी के खुले में खेती करवाने की व्यवस्था ऐसे उदाहरण हैं जिनका विश्व भर में अनुकरण किया जाना चाहिये। इनसे कैदियों के जीवन की पीड़ा कम हो सकती है। अतः वहां के विकास कार्यों की दशा संतोषजनक है। शिक्षा तथा राष्ट्र निर्माण के अन्य कार्यों में अजमेर राजस्थान से कहीं आगे है।

अन्त में, मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि अजमेर को उसके वैध अधिकारों से वंचित करने की सारी जिम्मेदारी केन्द्र पर है। इसकी जिम्मेदारी अजमेर की जनता अथवा वहां के राजनैतिक दलों की नहीं है, अपितु केन्द्र पर है। वस्तुतः यह केन्द्र का नैतिक और कानूनी दायित्व है कि राजस्थान में उसके विलय के बाद उसे अपना उचित स्थान प्राप्त हो। विलय के लिये यह अनिवार्य शर्त रखी जानी चाहिये।

मैं गृह मंत्रालय में उपमंत्री की जानकारी के लिये यह भी बताना चाहता हूं कि अजमेर की जनता अथवा वहां के प्रतिनिधि राजस्थान मंत्रिमंडल से अजमेर को वहां की राजधानी बनाने की भीख नहीं मांगेंगे। आपको वहां पर उच्च न्यायालय अथवा कोई महत्वपूर्ण कार्यालय स्थापित करना चाहिये क्योंकि यह पूरी तरह केन्द्र की नैतिक और कानूनी जिम्मेदारी है। अजमेर बहुत पहले ही अपना विलय चाहता था लेकिन केन्द्र के कारण इसमें विलम्ब हुआ है। अतः अजमेर को उसका उचित स्थान दिलाने की जिम्मेदारी पूरी तरह केन्द्र की है।

अब मैं हिमाचल प्रदेश के संबंध में कुछ शब्द कहना चाहता हूं। मेरे विचार से इस राज्य के साथ भी बहुत अन्यायपूर्ण व्यवहार किया गया है। आयोग के अधिकांश सदस्य हिमाचल प्रदेश को इस आधार पर पृथक राज्य बनाये जाने के पक्ष में नहीं है क्योंकि गृह मंत्रालय द्वारा ऐसा कोई वचन दिये जाने का कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं है। हिमाचल प्रदेश के प्रतिनिधि ने गृह मंत्रालय की वह विज्ञप्ति पढ़ कर सुनायी थी जिसमें भविष्य में हिमाचल प्रदेश को एक पृथक राज्य बनाने के संबंध में स्पष्ट वचन दिया गया था।

*** *** ***

केवल इस आधार पर उनकी मांग को ठुकराया नहीं जाना चाहिये।* दूसरे यह कहा गया है कि हिमाचल प्रदेश में विलय के विरुद्ध आम सहमति नहीं थी। वहां की विधान सभा में स्पष्ट रूप से यह मत व्यक्त किया गया था कि वे पंजाब के साथ उनके विलय के एकदम विरुद्ध हैं। इसे भी आयोग के अधिकांश सदस्यों ने अनदेखा कर दिया। तथापि, आयोग के अध्यक्ष श्री फाजल अली ने ऐसे दो उदाहरण दिये हैं जिनसे निश्चित रूप से यह सिद्ध होता है कि हिमाचल प्रदेश में जनमत विलय के विरुद्ध है। पहला उदाहरण यह है कि सरदार पटेल के समय जब यह टिप्पण लिखा गया था, तो स्पष्ट रूप से यह कहा गया था कि हिमाचल प्रदेश की जनता विलय के विरुद्ध है। वस्तुतः विलय का प्रश्न उठने के बहुत पहले ही यह बात कही गयी थी। दूसरी बात 1950 में उस समय हुई जब पंजाब उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को हिमाचल प्रदेश के क्षेत्र तक बढ़ाने की पेशकश की गयी, तो वहां की जनता ने एक स्वर से इसका विरोध किया। इसके फलस्वरूप भारत सरकार को पंजाब उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में हिमाचल प्रदेश को लाने के बजाय वहां एक न्यायिक आयुक्त नियुक्त करना पड़ा।

---

*पंडित ठाकुरदास भार्गव के इस कथन के उत्तर में कि "ऐसा कोई वचन नहीं दिया गया।"

मेरा जहां तक आर्थिक रूप से उससे आत्मनिर्भर होने का प्रश्न है, वहां के वनों, वहां उत्पन्न होने वाली जड़ी-बूटियों तथा खनिज पदार्थों से यह स्पष्ट है कि उस में आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होने की पर्याप्त क्षमता और संभावनायें हैं।

चौथे, यह भी कहा गया है कि उसकी स्थिति सामरिक महत्व की है अतः उसे पृथक राज्य नहीं बनाया जा सकता है। उस समय इस बात पर विचार नहीं किया गया कि प्रतिरक्षा का दायित्व राज्य का नहीं वरन् केन्द्र का है।

अतः मेरा अनुरोध है कि हिमाचल प्रदेश को भी एक पृथक राज्य बनाया जाये तथा वहां वही लोकतांत्रिक व्यवसथा कायम रहे जो इस समय मौजूद है। उसे केन्द्र प्रशासित क्षेत्र बनाना एक प्रतिगामी कार्यवाही होगी।

*** *** ***

अध्यक्ष महोदय, हम काफी समय से राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिशों पर विचार कर रहे हैं। भाषायी राज्यों की हिमायत करने वालों द्वारा दिये गये जोरदार तर्कों के बावजूद मैं यही बात कहना चाहता हूं और मुझे इस बात में तनिक भी संदेह नहीं है कि इतिहास इस बात को प्रमाणित करेगा कि ये लोग ही देश की एकता और सुरक्षा का हनन करने वाले हैं।

ऐसे समय जब देश विदेशी दासता और गुलामी से मुक्ति के भीषण संग्राम में जूझ रहा था उस समय तत्कालीन कांग्रेसी नेताओं का भाषायी राज्यों की रचना के संबंध में जो भी मत रहा हो उसमें स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् परिवर्तन अपरिहार्य था और वस्तुतः बेहतरी के लिए यह परिवर्तन आया भी है। दर आयोग तथा जे०वी०पी० के प्रतिवेदन में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि विशुद्ध और पूर्णतः भाषायी आधार पर राज्यों का पुनगर्ठन मात्र एक मध्ययुगीन नारा अथवा अवधारणा है। आन्ध्र के गठन के बारे में मेरा यह सादर निवेदन है कि वह एक देशभक्त के बलिदान की दुखद घटना के फलस्वरूप एकाएक ही हुआ था यह राष्ट्रीय स्तर पर इस समस्या पर गहरे सोच-विचार के बाद नहीं अपितु एक त्रासदी के परिणामस्वरूप हुआ था और उसके बाद ही इस भाषायी हठधर्मिता की शुरूआत हुई थी जिसे हम कुछ समय से देख रहे हैं। राज्य पुनर्गठन आयोग का प्रतिवेदन आने पर इस भावना को और अधिक हवा मिली है। तथापि, यदि हम इस प्रतिवेदन का विश्लेषण करें तो यह ज्ञात होगा कि इस विशिष्ट संकाय के विशिष्ट पदाधिकारियों ने भी एक भाषा-एक राज्य के सिद्धान्त को मानने से इन्कार कर दिया था। यद्यपि, इस तर्क का खंडन कर दिया गया तथापि विडम्बना यही है कि उनकी अन्तिम सिफारिशें राज्यों के विशुद्ध भाषायी आधार पर निर्माण के बारे में ही हैं। केवल द्विभाषी संयुक्त राज्य बम्बई और पंजाब को अपवादस्वरूप माना गया है। हमने देखा है कि वह वर्तमान विधेयक संयुक्त समिति से जिस रूप में आया था, उसमें भले ही इसके कोई भी

कारण रहे हों, राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिशों में काफी फेर-बदल कर दिया गया जिसके फलस्वरूप बम्बई के संयुक्त राज्य के स्थान पर अब महाराष्ट्र, महागुजरात और बम्बई का छोटा सा राज्य बनेगा। संयुक्त समिति ने पंजाब संबंधी सिफारिशों को भी स्वीकार नहीं किया और इस विधेयक द्वारा खंडित पंजाब का अस्तित्व सामने आया।

भाषायी राज्यों के प्रवर्तकों और समर्थकों ने यह तर्क दिया कि उत्तेजना समाप्त होने पर सब कुछ ठीक हो जायेगा। हमने देखा है, और यह तर्क भी दिया गया है कि भाषायी राज्यों के निर्माण का सीधा परिणाम भाषायी अल्पसंख्यकों को सुरक्षा और परित्राण देना है। अब इसके विरोध में कोई भी आवाज उठाना नक्कारखाने में तूती के समान है। तथापि, मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि कांग्रेसी नेताओं द्वारा 1916 के अधिवेशन में साम्प्रदायिक मताधिकार को स्वीकार करने से हमारे देश की राजनीति में साम्प्रदायिक विषाणुओं का प्रवेश कराया गया जिसका परिणाम अंततः यह हुआ कि हमारी जन्मभूमि का विभाजन हुआ और भारत और पाकिस्तान दो पृथक सम्प्रभुता सम्पन्न राज्यों का जन्म हुआ। भाषायी हठधर्मिता का जो विष इस समय बोया जा रहा है वह इस विधेयक की स्वीकृति के बाद देश के सारे राजनैतिक जीवन में फैल जायेगा और भविष्य में अत्यंत घातक सिद्ध होगा। मैं जानता हूं कि इस समय इसका विरोध करना या इसे रोक पाना अत्यंत कठिन है। तथापि, भाषायी हठधर्मिता को रोकने हेतु कहने के लिए महात्मा गांधी के समान प्रबल इच्छाशक्ति और निर्भीकता चाहिये। यदि ऐसा नहीं किया जायेगा और यह कहा जायेगा कि अब बहुत विलम्ब हो चुका है तो हमें यह भी समझना चाहिये कि अच्छे काम में कभी भी विलम्ब नहीं होता। तथापि, यदि ऐसा नहीं किया जायेगा तो हम देश की एकता की रक्षा नहीं कर सकते हैं और सुरक्षा व्यवस्था भी बनाए नहीं रख सकते हैं और इस बात की भी क्या गारंटी है कि भाषायी राज्यों को निर्माण के पश्चात् अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा की इस मांग के वही परिणाम नहीं होंगे जैसा कि पहले धार्मिक अल्पसंख्यकों की मांग के फलस्वरूप हुए थे। संस्कृति और शिक्षा के धरातल पर अल्पसंख्यकों की सुरक्षा की मांग अल्पसंख्यकों को विधान सभाओं और सेवाओं में सुरक्षा देने की मांग में परिवर्तित हो जायेगी! यह मांग प्रछन्न रूप से अभी भी विद्यामान है। कोई भी सच्चा देशभक्त जिसके हृदय में देश का हित सर्वोपरि है, ऐसी स्थिति में अविचलित नहीं रह सकता है। हमने 60 वर्षों तक संघर्ष करने के पश्चात् स्वतंत्रता प्राप्त की है, यह संघर्ष अभी समाप्त नहीं हुआ विदेशी शक्ति के विरुद्ध हमारा संघर्ष अवश्य समाप्त हो गया है तथापि, गरीबी, गंदगी, बीमारी और आय में विषमता के विरुद्ध हमारा संघर्ष आज भी जारी है। समाजवादी ढांचे का समाज बनाने के लक्ष्य को स्वीकार करने के पश्चात् हमें अपनी समस्त शक्तियों को इस ओर केन्द्रित करना चाहिये इसलिये इस समय भाषायी आधार पर राज्यों का निर्माण नितांत असंगत और असामयिक

है। इसने राष्ट्र की शक्तियों को भाषायी हठधर्मिता की ओर मोड़ दिया है जिसके फलस्वरूप नयी समस्यायें पैदा हो गयी हैं और हमें गंभीरता से यह सोचना पड़ रहा है कि क्या हम वास्तव में एक राष्ट्र हैं? बड़े कटु ढंग से उत्तेजना पूर्ण स्वरों में घटिया स्तर पर इस प्रकार की मांग रखी जा रही है कि एक विशेष क्षेत्र को बिहार में शामिल कर दिया जाये या बंगाल में अथवा बम्बई नगर महाराष्ट्र राज्य में शामिल किया जाये अथवा गुजरात राज्य में, प्रत्येक राष्ट्रभक्त के हृदय में यह विचार सर्वोपरि होना चाहिये कि वह विशेष क्षेत्र भले ही बिहार राज्य में हो अथवा बंगाल में अथवा बम्बई नगर में हो, वह प्रमुख रूप से भारत का अंग है न कि किसी भाषायी राज्य अथवा गुट का। हमें इन सभी प्रश्नों के बारे में राष्ट्रीय स्तर पर विचार करना चाहिये।

हमारे महान संविधान के प्रति हमारी निष्ठा प्रत्येक व्यक्ति को समान नागरिकता तथा समान अधिकारों की गारंटी देती है, भले ही वह व्यक्ति किसी भी भाषायी राज्य अथवा किसी विशेष क्षेत्र का निवासी हो। भारत के धुर-दक्षिण में रहने वाला एक व्यक्ति भारत के किसी भाग से भी संसद का चुनाव लड़ सकता है। तब क्या यह अवधारणा कि एक विशेष क्षेत्र किसी विशेष राज्य का ही होना चाहिये, समान नागरिकता के अधिकार जिसकी हमारे महान संविधान के अधीन प्रत्येक नागरिक को गारंटी मिली हुई है, के अनुरूप है? इसलिये मेरा विनम्र निवेदन है कि इस सम्माननीय सभा, जो देश के सर्वश्रेष्ठ बुद्धिजीवियों का प्रतिनिधित्व करती है, में हुई इस चर्चा से प्रत्येक ऐसे व्यक्ति की आंख खुल जानी चाहिए जो हार्दिक रूप से देश का हित चाहता है। इस सभा में जब राज्य पुनर्गठन के मामले पर तीन अवसरों पर चर्चा की गयी उस समय की याद आई जब सभा के एक भाग में श्री जिन्ना की अध्यक्षता वाली मुस्लिम लीग के सदस्य बैठा करते थे। अन्ततोगत्वा हमें इस सारी स्थिति पर विचार करने के उपरांत, यदि अनिवार्य हो तो, संयुक्त समिति, जिसमें इस सभा के अधिकांश विशिष्ट सदस्यों का प्रतिनिधित्व प्राप्त है, की सिफारिशों को स्वीकार करना चाहिये।

उक्त सामान्य विचारों को व्यक्त करने के पश्चात् अब मैं राजस्थान में अजमेर के विलय के संबंध में कुछ कहना चाहता हूं। मैंने पहले भी सभा तथा गृहमंत्री का ध्यान इस ओर दिलाया है कि राजस्थान के साथ अजमेर का विलय तभी किया जाये जबकि पुनर्गठित राजस्थान की भावी व्यवस्था में अजमेर के हित सुरक्षित हों। अजमेर को अनेक शताब्दियों तक सहज प्राप्त गौरव से वंचित रखा गया है इसलिये नहीं कि वहां की जनता ऐसा चाहती थी अपितु इसलिये कि केन्द्र की सरकार यह चाहती थी। कुछ समय के लिये अंतिम भारतीय सम्राट पृथ्वीराज ने अजमेर को, दिल्ली से अधिक प्राथमिकता देकर अपनी राजधानी बनाया इसके पश्चात् मुगलों, मराठों और अंग्रेजों के शासनकाल में भी अजमेर ने राजस्थान तथा उसके निकटवर्ती प्रदेशों की घटनाओं को संचालित तथा

प्रभावित करने में प्रमुख भूमिका निभायी है। अजमेर ने किसी पक्षपात के कारण नहीं अपितु अपनी स्वाभाविक गौरवपूर्ण स्थिति के कारण इतिहास के पूरे दौर में महत्वपूर्ण कार्य किया है। 1948-49 में जब राजस्थान-संघ के निर्माण की प्रक्रिया चल रही थी, तो अजमेर के निवासियों ने पुरजोर यह मांग रखी थी कि अजमेर का अन्य रियासतों के साथ राजस्थान में विलय कर दिया जाये तथा उसकी विशेष तथा केन्द्रीय स्थिति के कारण उसे नवीन राजस्थान की राजधानी बनाया जाये। यह केवल अजमेर की मांग नहीं थी अपितु राजस्थान प्रान्तीय कांग्रेस समिति के माध्यम से यह राजस्थान की समस्त जनता की मांग थी कि अजमेर का भी अन्य रियासतों के साथ राजस्थान में विलय किया जाये तथा उसे नवीन राजस्थान की राजधानी बनाया जाये। उस समय माननीय गृह मंत्री तथा भारत सरकार ने राजनैतिक कारणों से हमारा अनुरोध ठुकरा दिया। इसके फलस्वरूप राजस्थान राज्य में अजमेर को शामिल नहीं किया गया और अजमेर नौकरशाही का गढ़ मात्र बनकर रह गया। इसके पश्चात् हमने वहां की व्यवस्था को लोकतंत्रात्मक बनाये जाने के लिये संघर्ष किया। पर्याप्त संघर्ष के पश्चात् हमें सफलता मिली तथापि, अब विलय का प्रश्न अटक गया।

हमसे कहा गया कि राजधानी के स्थान के बारे में हम राजस्थान के नेताओं से बातचीत करें। राजस्थान के नेताओं का रवैया इस संबंध में कठोर और उपेक्षापूर्ण रहा है। अजमेर के प्रतिनिधियों की राजस्थान के नेताओं के साथ पिछली बार जो बैठक हुई थी उसमें इस प्रश्न के गुण-दोषों पर विचार करने से इंकार कर दिया गया तथा राजधानी के लिये स्थान निर्णय करने के प्रश्न पर एक निष्पक्ष आयोग की नियुक्ति करने की मांग को भी ठुकरा दिया। हमारी राय है कि प्रत्येक दृष्टि से, उपयुक्तता की दृष्टि से, राजस्थान के प्रत्येक भाग से सुगम्य होने की दृष्टि से, राज्य के मध्य में तथा अपेक्षाकृत ऊंचाई पर स्थित होने की दृष्टि से तथा मनोरम जलवायु की दृष्टि से उसे पहले भी राजस्थान की राजधानी होने के उपयुक्त समझा गया और इसी कारण अभी भी इसे राजधानी बनाया जाना चाहिए। तथापि, उन्होंने हमारा अनुरोध ठुकरा दिया और वे इस विषय पर पुनर्विचार के लिए तैयार नहीं है। हमारी यह विनती कि इस प्रश्न को कांग्रेस हाई कमांड के हाथों सौंप दिया जाए, ठुकरा दी गयी। तब क्या बाकी रह गया? केन्द्रीय सरकार ने राजनैतिक औचित्य के आधार पर इसे राजस्थान में शामिल करना ठीक नहीं समझा। इसका यह फल हुआ कि उसे राज्य में अपना उचित और सम्माननीय स्थान नहीं मिला। केन्द्रीय सरकार इसमें हस्तक्षेप क्यों नहीं करती तथा अपने प्रभाव का प्रयोग कर राजस्थान के नेताओं को इस मामले में न्याय करने के लिए क्यों नहीं कहती है।

मैं नये विधेयक के खंड 52 का स्वागत करता हूं। इस विधेयक के अधीन राष्ट्रपति को उच्च न्यायालयों की पीठ को स्थापित करने के लिए उपयुक्त स्थान का निर्णय करने

का अधिकार होगा। यदि किन्हीं कारणों से राजधानी के प्रश्न पर तत्काल निर्णय नहीं लिया जा सकता है, और उसे कुछ समय के लिए निलम्बित रखा जाता है तो अजमेर की स्थिति, ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय महत्व को देखते हुए राजस्थान उच्च न्यायालय की पीठ की वहां स्थापना की जाए। तथापि, हमारी इस मांग पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। मैं माननीय मंत्री जी से यही आग्रह कर सकता हूं कि वे अजमेर के साथ न्याय करें क्योंकि केन्द्रीय सरकार के रवैये के कारण ही उसे 1948-49 में राजस्थान में शामिल नहीं किया गया जिसके फलस्वरूप उसे अपनी उचित और सम्माननीय स्थिति से वंचित होना पड़ा। अब कम से कम न्यायपालिका अथवा उच्च न्यायालय की पीठ को स्थापित करने के प्रश्न पर विचार करते समय अजमेर के अधिकार को मान्यता दी जानी चाहिए। ऐसा कोई कारण नहीं कि हमारी इस विनम्र मांग पर सहानुभूतिपूर्वक विचार न किया जाए और उसे लागू न किया जाए।

*** *** *** ***

*खंड 16 से 49 पर, जो इस समय विचाराधीन हैं, चर्चा करने से पूर्व मैं अपने भूतपूर्व वित्त मंत्री श्री सी०डी० देशमुख द्वारा व्यक्त की गयी भावना का हार्दिक समर्थन करना चाहूंगा और बम्बई को संयुक्त और द्विभाषी राज्य बनाए जाने का पुरजोर समर्थन करूंगा। बम्बई, जो चर्चा का मुख्य विषय है, केवल एक सीमित और क्षेत्रीय विषय नहीं रह गया है, अपितु एक राष्ट्रीय प्रश्न बन गया है, मैं आशा करता हूं कि कांग्रेस दल अपने सदस्यों को बम्बई को एक बड़ा, संयुक्त और द्विभाषी राज्य बनाए जाने के पक्ष में मतदान करने की पूर्ण स्वतंत्रता देगी। देश की अखंडता और एकता के लिए यह आवश्यक है।

खंड 16 से 25 में कुछ क्षेत्रीय परिषदों को स्थापित करने की व्यवस्था की गयी है। यह प्रस्ताव है कि देश को पांच खंडों में विभाजित कर दिया जाए और उस खंड के अधीन आने वाले राज्यों के बीच समान हित के विषयों पर परामर्श और सहयोग करने की व्यवस्था की जाए। तथापि, मुझे संदेह है कि अपने वर्तमान रूप में यह योजना सफल भी हो पाएगी? यदि आप खंड 23 को देखें तो आपको ज्ञात होगा कि इन परिषदों का कार्य सामाजिक और आर्थिक योजनाओं, सीमा संबंधी विवादों, अल्पसंख्यकों, अन्तर्राज्यीय परिवहन तथा राज्यों के पुनर्गठन से संबंधित मामलों के संबंध में परस्पर सहयोग और परामर्श करना है। अभी जो संशोधन प्रस्तुत किए गए हैं उनमें से एक में यह सुझाव दिया गया है कि राज्य सरकारें तथा केन्द्रीय सरकार इन परिषदों को कुछ शक्तियां प्रत्यायोजित करेगी किन्तु विधेयक के प्रावधानों के अधीन जिस प्रकार की परिषदों की व्यवस्था की गयी है वे केवल सलाह देने वाली, परामर्शदात्री और सिफारिश करने वाली होंगी।

---

*लोक सभा वाद-विवाद 3 अगस्त, 1956, स्तम्भ 2130--2134

परिणाम स्वरूप, उनको जो कार्य सौंपे गए हैं वे सामान्य प्रकार के हैं यथा सामाजिक और आर्थिक योजनाएं बनाना। इसमें ऐसा प्रतीत होता है कि सारे विषय आ जाएंगे किन्तु वस्तुतः एक ही विषय नहीं आएगा। वास्तव में यह इस बात पर निर्भर करेगा कि जब केन्द्रीय मंत्री की अध्यक्षता या सभापतित्व में उनकी बैठक होगी तो वे उन विषयों पर किस प्रकार चर्चा करना चाहते हैं।

किंतु खंड 23 के अधीन इन परिषदों को जो महत्वपूर्ण कार्य दिए जा रहे हैं वे हैं भाषायी अल्पसंख्यकों और सीमा संबंधी विवादों को हल करना। मैं आदरपूर्वक यह निवेदन करना चाहता हूं कि उच्च परिषदें ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्नों पर निश्चित और प्रभावशाली तरीके से विचार कर पाएंगी यह बात समझ में नहीं आती है। जैसाकि मेरे माननीय मित्र ने अपने संशोधन में बोलते हुए बताया कि ये प्रावधान भाषायी अल्पसंख्यकों को कोई सुरक्षा नहीं देते हैं। ऐसा संविधान में संवैधानिक प्रावधान करके अथवा संसद द्वारा विशेष कानून पारित करके ही किया जा सकता है। जब तक ऐसा नहीं किया जाएगा यह प्रयोजन हल नहीं होगा और इन क्षेत्रीय परिषदों के पास ऐसे आंकड़े या विशेष नीति नहीं होगी जिनके आधार पर वे अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा के संबंध में कोई निर्णय ले सकें। इसीलिए इन प्रावधानों के साथ एक ऐसा कानून भी बनाया जाना चाहिए जिसमें सीमा संबंधी विवादों से निपटने के सिद्धान्तों का उल्लेख हो। जैसाकि हमने चर्चा के दौरान देखा है कि एक राज्य अथवा एकाधिक राज्यों के बीच भी कई विवाद हैं। जब तक विधि में उन विशेष सिद्धांतों का, भले ही वे राज्यों की सहमति अथवा असहमति से हों, उल्लेख नहीं किया जाएगा, तब तक इन क्षेत्रीय परिषदों के लिए इन्हें सौंपे गए कार्यों को पूरी कुशलता और संतोषजनक तरीके से निपटाना असंभव होगा।

जहां तक सामाजिक और आर्थिक योजना बनाने का प्रश्न है, यह शब्दावली अस्पष्ट है और इसके स्थान पर अधिक स्पष्ट लक्ष्यों का, जिनके विषय में सहयोग और परामर्श करना है, उल्लेख करना अधिक उचित रहता। तथापि, यदि इन परिषदों का एकमात्र उद्देश्य भाषायी उन्माद से उठने वाली मांग का मुकाबला करना हो, तो यह सही दिशा में उठाया गया कदम है और मैं इसका पूर्ण समर्थन करता हूं। समय गुजरने के साथ जब हमें यह ज्ञात होगा कि भाषायी आधार पर राज्यों का पुनर्गठन का निर्णय सही नहीं था, तब ये क्षेत्रीय परिषदें बड़ी इकाइयों के विकास के लिए अंकुर सिद्ध होंगी और जैसाकि मेरे पूर्ववर्ती वक्ता ने कहा कि वे दक्षिण में एक बड़े राज्य के निर्माण में सहायक सिद्ध होंगी।

तीसरी बात, जिस पर मैं ध्यान दिलाना चाहता हूं वह भाग 'ग' के अन्तर्गत आने वाले राज्यों के प्रशासन को लोकतंत्रात्मक स्वरूप देने के संबंध में है। भाग 'ग' राज्यों की समस्या लम्बे समय से अधर में लटकी हुई है। संविधान सभा में भी केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों

की समस्या का प्रश्न उठाया गया था और इन्हें भाग 'ग' में शामिल किया गया था। नए राज्यों जैसे हिमाचल प्रदेश और विंध्य प्रदेश जैसे तत्कालीन राज्यों के विलय होने से बने कई नए राज्य भी भाग 'ग' राज्यों में शामिल हैं। संविधान सभा के सम्मुख भी यह प्रश्न आया था कि इन राज्यों में क्या व्यवस्था की जाए। उस समय यह सुझाव दिया गया कि वहां लोकतंत्रात्मक व्यवस्था कायम करना इस कारण संभव नहीं है क्योंकि उन्हें उत्तरदायी सरकार के संबंध में कोई अनुभव नहीं है। "पट्टाभि" प्रतिवेदन में इन राज्यों में भी लोकतांत्रिक व्यवस्था कायम करने की सिफारिश की गयी थी लेकिन इस सिफारिश को स्वीकार नहीं किया गया। तथापि, संविधान में ही अनुच्छेद 239 और 240 शामिल कर लिए गए। इनके द्वारा संविधान में यह अधिकार दिया गया है कि संसद इन क्षेत्रों को किसी भी प्रकार का लोकतांत्रिक प्रशासन, यहां तक कि भाग 'क' राज्यों के समकक्ष प्रशासन दे सकती है। सभा में वर्षों तक अनवरत संघर्ष करने के पश्चात ही, भाग 'ग' राज्यों से आने वाले प्रतिनिधियों को संसद द्वारा भाग 'ग' राज्य सरकार अधिनियम पारित करवाने में सफलता मिली है। राज्य पुनर्गठन आयोग को नियुक्त करने का एक मुख्य उद्देश्य यह भी था कि राज्यों की विभिन्न श्रेणियों यथा क, ख, ग के बीच विद्यमान विभेद समाप्त कर दिए जाएं। प्रतिवेदन में राज्यों की तीन श्रेणियों को समाप्त करने का प्रयास भी किया गया है। उन्होंने केवल केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों तथा भाग 'क' राज्यों के निर्माण की सिफारिश की है। तथापि, यह आश्चर्य की बात है कि संयुक्त समिति ने भारतीय संघ के एककों के पुनः वर्गीकरण और श्रेणीकरण की सिफारिश की है तथा उन्हें तीन वर्गों यथा क, ख और ग में विभाजित कर दिया है। जहां तक भाग 'ख' राज्य का संबंध है, केवल कश्मीर को ही भाग "ख" में शामिल करने का प्रस्ताव है, अन्य सभी राज्यों को भाग "क" राज्य का दर्जा दे दिया गया है। भाग "ग" राज्यों में तब से बाद में जोड़े गए बम्बई राज्य को मिलाकर इस समय हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा और दिल्ली राज्य हैं। जहां तक राज्य पुनर्गठन विधेयक का प्रश्न है वह "भाग-ग राज्यों" की सरकार अधिनियम को रद्द नहीं करता है। तथापि, संविधान (नौवां संशोधन) विधेयक में अनुच्छेद 239 और 240 का संशोधन करने का एक प्रस्ताव है। संविधान संशोधन विधेयक में शामिल किए गए संशोधनों को देखकर यह बात कहने को विवश होना पड़ता है कि यह एक प्रतिगामी कदम है। ऐसा प्रतीत होता है भारत सरकार का यह प्रस्ताव है कि जिन राज्यों को इस समय भाग 'ग' राज्यों में शामिल किया है, उनमें लोकतंत्री व्यवस्था नहीं होगी। मेरा विनम्र निवेदन है कि यह एक प्रतिगामी कार्यवाही है। हमें अपने उदात्त संविधान की भूमिका का स्मरण रखना चाहिए जिसके अन्तर्गत भारत के सभी नागरिकों को सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतांत्रिक गणराज्य की गारन्टी दी गयी है। हम सभी एक ऐसे सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न गणराज्य के अंग हैं जहां उन्हें सामाजिक, आर्थिक और

राजनैतिक न्याय और समान अवसर प्राप्त होंगे। यदि छोटे-छोटे राज्यों यथा मणिपुर, त्रिपुरा, दिल्ली, बम्बई और हिमाचल प्रदेश को लोकतंत्रात्मक सरकार नहीं दी गयी, इनमें से दो राज्यों तथा दिल्ली और हिमाचल प्रदेश को अभी भी लोकतंत्री सरकार प्राप्त है, और यदि इन दो राज्यों की विधान सभाओं को भंग कर दिया गया, तब आप अपने उदात्त वचन को, जिसके अधीन आपने भारत के सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय देने तथा सभी नागरिकों को समानता देने की बात कही है, कैसे पूरा करेंगे। उन क्षेत्रों में रहने वालों को उत्तरदायी सरकार नहीं मिलेगी, प्रशासन में उनका कोई हिस्सा नहीं होगा तथा वहां की विधान सभाएं भंग हो जाएंगी। यह सब भारत के लोकतंत्रात्मक संविधान के अनुरूप नहीं है। वर्तमान समय को देखते हुए यह एक पिछड़ा कदम है। मेरे विचार से राज्य पुनर्गठन विधेयक का यह कलंक मिटाना चाहिए तथा उन क्षेत्रों में भी ऐसी उत्तरदायी सरकार की स्थापना की जानी चाहिए जैसी कि भाग 'ग' राज्य सरकार अधिनियम में प्रावधान किया गया है। अन्यथा हम अपने संविधान की प्रस्तावना में दिए गए वचनों को पालन न करने के दोषी सिद्ध होंगे।

*** *** *** ***

*अब मैं खंड 52 पर कुछ शब्द कहना चाहता हूं। इस खंड के अधीन राष्ट्रपति को किसी भी राज्य में उच्च न्यायालय का स्थान निश्चित करने का अधिकार है। खंड 52 के उपखंड (1) और (2) के बीच अन्तर है। जहां तक उच्च न्यायालयों के स्थानों के अलावा उच्च न्यायालयों की स्थायी पीठों की स्थापना का संबंध है, राष्ट्रपति राज्य के राज्यपाल तथा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करने को बाध्य है। किन्तु जहां तक उच्च न्यायालय की पीठ के स्थान का संबंध है, उपखंड 1 के अधीन वह पूरी तरह राष्ट्रपति के क्षेत्राधिकार के अधीन है।

अब अजमेर राज्य का राजस्थान राज्य में विलय किया जा रहा है। राजधानी के स्थान का प्रश्न अभी तक लटका हुआ है, उस संबंध में कोई निर्णय नहीं लिया गया है। मैंने विधेयक पर सामान्य चर्चा के दौरान यह कहा था कि इसका दायित्व मुख्यतः केन्द्रीय सरकार—गृह मंत्रालय का है—कि वे राजस्थान के नेताओं के साथ इस प्रश्न का निपटारा करें क्योंकि उस समय, जब राजस्थान और अजमेर की जनता, राजस्थान में विलय तथा अजमेर को राजधानी बनाने की एक साथ मांग कर रही थी, उस समय अजमेर को राजस्थान में विलय न करने की सारी जिम्मेदारी केन्द्रीय सरकार की है।

---

*लोक सभा वाद विवाद, 6 अगस्त 1956, स्तम्भ 2318—2320

अभी तक गृह मंत्रालय ने इस प्रश्न पर कोई रुचि नहीं ली है और न ही मामले के साथ न्याय ही किया है।

*** *** ***

इस बात को देखते हुए कि केन्द्र की सरकार राजधानी के स्थान के संबंध में राजस्थान सरकार पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकती क्योंकि यह मामला मुख्य रूप से प्रान्तीय सरकार के अधीन आता है किन्तु यह बात अजमेर में उच्च न्यायालय की पीठ की स्थापना करने के संबंध में नहीं कही जा सकती है। मेरा विनम्र अनुरोध है कि इस बात को देखते हुए कि अजमेर राजस्थान के मध्य में और बीच में स्थित है तथा वहां से राजस्थान के सभी प्रमुख नगरों में सरलता और सुगमता से पहुंचा जा सकता है, यह केवल अजमेर की जनता के हित में ही नहीं अपितु राजस्थान राज्य की सारी जनता के हित में है कि वहां उच्च न्यायालय की स्थापना की जाए इससे मुकदमे में फंसी हुई सारी जनता कम खर्च पर सुगमता से वहां पहुंच सकेगी। उदाहरणार्थ, उदयपुर, कोटा और बूंदी के लोगों को जयपुर अथवा जोधपुर जाने के लिए जहां उच्च न्यायालय की एक पीठ स्थापित है, अजमेर से होकर गुजरना होता है। अतः न केवल अजमेर की जनता के हितों की दृष्टि से, अपितु राजस्थान के व्यापक हितों की दृष्टि से, अजमेर के प्रति न्याय किया जाना चाहिए और उच्च न्यायालय की मुख्य पीठ जयपुर के स्थान पर अजमेर में स्थापित की जानी चाहिए। उपखंड (2) के संबंध में मेरा विनम्र अनुरोध है कि केवल विशेष अपवादों को छोड़कर विभिन्न स्थानों में एक उच्च न्यायालय की कई पीठें स्थापित करना न्याय के अनुरूप नहीं होगा। क्योंकि यदि मुकदमों की संख्या बहुत अधिक नहीं है तो किसी स्थान विशेष की जनता की इच्छा और सनक को पूरा करने के लिए, राज्य के विभिन्न स्थानों में उच्च न्यायालय की स्थायी पीठों की स्थापना करने का कोई औचित्य नहीं है। यदि मुकदमों की संख्या इतनी अधिक है कि विभिन्न स्थानों पर खंडपीठों को स्थापित करना उचित है तब यह दूसरी बात है। तथापि, जहां तक राजस्थान का संबंध है मेरा विनम्र अनुरोध है कि मुकदमों की संख्या उतनी अधिक नहीं है कि विभिन्न स्थानों में उच्च न्यायालय की पीठों की स्थापना करने का औचित्य सिद्ध हो सके। मामले को न्यायोचित दृष्टि से देखने पर, तथा राजस्थान के मध्य में अजमेर के महत्व को बनाए रखने का संपूर्ण दायित्व केन्द्रीय सरकार का है तथा केन्द्रीय सरकार के कारण ही अजमेर को राजस्थान की राजधानी बनने की उचित और सम्माननीय स्थिति से वंचित होना पड़ा था। मैं पुरजोर यह अनुरोध करूंगा कि केन्द्रीय सरकार को नए राज्य राजस्थान के उच्च न्यायालय की पीठ को अजमेर में स्थापित करने का निर्णय लेना चाहिए।

*** *** ***

श्रीमान, मैं इस विधेयक के प्रस्तुतकर्ता को, एक बहुत ही महत्वपूर्ण विषय पर अपने विचार व्यक्त करने का अवसर देने के लिए बधाई देता हूं। विधेयक में उच्च न्यायालय की पीठ की शक्ति और अधिकार क्षेत्र के संबंध में बुनियादी प्रश्न उठाए गए हैं। विधेयक की धारा 51 के खंड 1, 2 और 3 को पढ़ने के बाद यह समझ में नहीं आता कि केरल उच्च न्यायालय ने इस प्रकार का निर्णय क्यों लिया। जहां तक धारा 51 (2) के प्रावधानों के अधीन स्थायी पीठ की स्थापना का संबंध है, अथवा धारा 51 (3) के प्रावधानों के अधीन अस्थाई पीठ की स्थापना का संबंध है ये धाराएं केवल अस्थायी अथवा स्थायी पीठों की स्थापना के संबंध में हैं। लेकिन जहां तक क्षेत्राधिकार का प्रश्न है, चाहे वह पीठ स्थायी अथवा अस्थायी हो, उसका क्षेत्राधिकार मुख्य न्यायालय के समान ही है। ट्रावनकोर न्यायालय के प्रति पूर्ण आदर प्रदर्शित करते हुए, इस धारा की शब्दावली से उन्होंने यह निर्णय किस प्रकार लिया कि मुख्य न्यायाधीश द्वारा राज्यपाल के परामर्श से खंड 51 (3) के अधीन स्थापित की जाने वाली अस्थायी पीठ का क्षेत्राधिकार सीमित होता है। इस धारा में ऐसी खंड पीठ के क्षेत्राधिकार के सीमित होने का कहीं उल्लेख नहीं है।

यदि इस विषय पर आगे विचार किया जाए तथा इस व्याख्या को स्वीकार किया जाये तो यह व्याख्या धारा 51 (3) के अधीन स्थापित अस्थायी पीठों पर ही लागू होनी चाहिए। तथापि यह धारा 51 (2) के अधीन स्थापित स्थायी पीठों पर भी लागू हो सकती है। इसका अर्थ यह हुआ कि अपील तथा दूसरी कार्यवाही उच्च न्यायालय की मुख्य पीठ पर ही की जा सकती है तथा स्थायी तथा अस्थायी पीठ केवल ऐसे ही मामलों को ले सकेंगी जो उच्च न्यायालय द्वारा स्थानांतरित किए जाएंगे। इस व्याख्या से इस प्रावधान की सारी उपयोगिता ही समाप्त हो जाएगी। मेरा निवेदन है कि इस विधेयक द्वारा एक बुनियादी और महत्वपूर्ण प्रकार का प्रश्न उठाया गया है। यदि हम ट्रावनकोर उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के मूल में जाएं, तो यह प्रतीत होगा कि यह भ्रांति विधि आयोग के उस प्रतिवेदन के फलस्वरूप पैदा हुई है जिस पर कल सभा में चर्चा हुई थी। 26 अगस्त को दिए गए अपने प्रतिवेदन में विधि आयोग इस सर्वसम्मत और दृढ़ निश्चय पर पहुंचा था कि प्रत्येक राज्य में उच्च न्यायालय की एक समेकित पीठ होनी चाहिए। उसने स्पष्ट और निश्चित शब्दों में किसी भी राज्य में उच्च न्यायालय की पीठों की स्थापना और इन्हें जारी रखने को गलत ठहराया था। यह प्रश्न बुनियादी महत्व का है।

जहां तक भारत सरकार की तथा धारा 51 के अधीन राष्ट्रपति की जिम्मेदारी का प्रश्न है, भारत सरकार ने ढुलमुल नीति अपनायी है। सरकार ने अभी तक यह नहीं बताया है कि वह इस सिफारिश को स्वीकार करना चाहती है अथवा नहीं। सरकार की इसी अस्थिर

तथा दुलमुल नीति के कारण ही यह भ्रांति पैदा हुई है। ट्रावनकोर उच्च न्यायालय ने अस्थायी पीठ के क्षेत्राधिकार सीमित करने के संबंध में धारा 51(3) के अधीन जो व्याख्या की है, वह भारत सरकार की दुलमुल नीति के परिणामस्वरूप ही संभव हुई है। इस मामले को ऐसे ही नहीं लटकाना चाहिए। राजस्थान राज्य इस प्रतिवेदन से पहले ही प्रभावित हो चुका है क्योंकि राव समिति ने विधि आयोग की इस सिफारिश की आड़ लेकर जयपुर से उच्च न्यायालय की पीठ हटाने की जोरदार सिफारिश की है। इस प्रश्न पर विचार किया जाना चाहिए कि सरकार, जो सभी को समान न्याय देने के लिए वचनबद्ध है, जो सभा के साथ संविधान के भाग 3 में निहित मूलभूत अधिकारों के अधीन समान बर्ताव करने के लिए प्रतिबद्ध है, वह विभिन्न राज्यों के साथ इस प्रकार का भेदभाव पूर्ण व्यवहार किस प्रकार कर रही है। यदि खंडपीठ स्थापित करने की नीति को स्वीकार किया जाए तो सभी राज्यों को समान सुविधा दी जानी चाहिए।

जहां तक जनमत का प्रश्न है, जनता ने अपनी इच्छा को बता दिया है और वह खंडपीठ स्थापित करने के पक्ष में है। कारण बिल्कुल स्पष्ट है। यह एक सर्वसम्मत सिद्धान्त ही नहीं, अपितु प्रत्येक सभ्य राज्य का यह सर्वप्रथम कर्तव्य है कि जनता को न्याय कम से कम खर्च पर और तत्काल उपलब्ध करवाए। एक ही राज्य में अनेक न्यायपीठों की स्थापना, जिनका क्षेत्राधिकार विभिन्न क्षेत्रों में हो, यह न्याय को सुगमता से उपलब्ध करवाने की नीति का ही निश्चित परिणाम है। मैं गृह मंत्री से यह अनुरोध करना चाहता हूं कि केन्द्र की इस दुलमुल नीति के फलस्वरूप राजस्थान की जनता के साथ अन्याय हुआ है। केन्द्र को इस बात का दृढ़ निश्चय करके यह घोषणा करनी चाहिए कि क्या वह केवल एक पीठ के संबंध में विधि आयोग के निर्णय को स्वीकार करती है और यदि ऐसा है तो, उसमें इतना साहस और संकल्प होना चाहिए कि वह इस सिफारिश को सारे राज्यों में लागू करवाए और केवल राजस्थान को प्रताड़ित न करे।

पुनः यदि उच्च न्यायालय की एक ही पीठ स्थापित की जाती है तो उसे राज्य के मध्य में स्थापित किया जाना चाहिए, अजमेर अथवा उसी की तरह ऐसे स्थान पर स्थापित करना चाहिए जो राज्य के मध्य में स्थित हो, न कि ऐसे स्थान पर जो राज्य के किसी कोने में हो और लोगों को अपने मुकदमे दाखिल करने अथवा उनकी सुनवाई के लिए भी 300 अथवा 400 मील जाना पड़े। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि वादी अपीलीय न्यायालय में भी उन्हीं वकीलों को लगाना चाहते हैं जिन्होंने निचली न्यायालय में उनके मुकदमों की पैरवी की थी इससे उन्हें बहुत अधिक व्यय करना पड़ता है।

मेरा विनम्र निवेदन है कि यदि सरकार उच्च न्यायालय की एकीकृत पीठ के सिद्धांत को स्वीकार करती है तो मेरे राज्य में उच्च न्यायालय को स्थानांतरित कर उसे राज्य के

किसी मध्यवर्ती स्थान में स्थापित किया जाना चाहिए। यदि सरकार ऐसा नहीं करती है तो उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ को किसी मध्यवर्ती स्थान अथवा जयपुर अथवा किसी अन्य स्थान पर स्थापित कर राजस्थान राज्य के प्रति किए गए अन्याय का निराकरण किया जाना चाहिए।

इन शब्दों के साथ, मैं इस विधेयक का पुरजोर समर्थन करता हूं।

3

उपयोगी पशु परिरक्षण/गोसंवर्धन विधेयक के संबंध में*

इस विधेयक के समर्थन में मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं।* मुझ से पहले भाषण देने वाले सदस्य भाग 'क' और भाग 'ख' राज्यों के हैं और मैं भाग "ग" राज्य से हूं। इस प्रश्न पर बोलने का मुझे विशेष अधिकार है।

इस विधेयक का क्षेत्र बहुत सीमित है इसलिए सरकार और माननीय मित्र खाद्य उपमंत्री द्वारा इसका विरोध किए जाने पर मुझे आश्चर्य हुआ है।

*** *** ***

मेरे माननीय मित्र ने मुझे यह बताया कि उन्होंने इसका खुले तौर पर विरोध नहीं किया है।** उनके रवैये से पता चलता है कि वह विधेयक को पारित होने नहीं देना चाहते हैं। जहां तक इस विधेयक का संबंध है, यह एक ही प्रश्न पर सीमित है। इस विधेयक में अंतर्निहित सिद्धांत यह है कि भविष्य में भाग "ग" राज्यों में उपयोगी पशुओं का वध नहीं होगा, और जो व्यक्ति देश के इन क्षेत्रों में उपयोगी पशुओं के वध के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दोषी होगा तो उसे दंड दिया जाएगा। यह विधेयक सिर्फ इसी मुद्दे पर आधारित है और मुझे यह जानकर धक्का लगा।

विरोधी पक्ष के मेरे माननीय मित्र ने काफी लम्बे समय से सरकार के विचाराधीन इस प्रस्तावित विधेयक पर व्यापक दृष्टिकोण अपनाया है तथा उन्होंने अपने भाषण में सभा को विधेयक की रूपरेखा भी बताई है। तथापि एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय पर, जो विधेयक की विषय वस्तु का एकमात्र मुद्दा है, खाद्य उपमंत्री ने चुप्पी साध ली है।

*** *** ***

प्रश्न यह है कि क्या सरकार यह सिद्धांत स्वीकार करती है कि भविष्य में उपयोगी

---

*उपयोगी पशु परिरक्षण (गोसंवर्धन) विधेयक, जिस पर लोक सभा में 12 दिसम्बर, 1950 को चर्चा हुई।

**श्री सोधी के इस कथन कि "वह इसका विरोध नहीं कर रहे हैं" के उत्तर में।

पशुओं का वध नहीं किया जाएगा।* यदि यह सिद्धांत स्वीकार कर लिया जाये तो विधेयक को कानून बनाने में कोई अड़चन नहीं होनी चाहिए। जहां तक मैं समझ पाया हूं यद्यपि मेरे माननीय मित्र ने अपने प्रस्तावित विधेयक के गुणों का विस्तार से वर्णन किया है तथा यह बताया है कि विधेयक में न केवल उपयोगी पशुओं अपितु अनुपयोगी पशुओं के भी परिरक्षण की व्यवस्था है परन्तु उन्होंने यह नहीं बताया कि सरकार तत्काल पशुवध बंद करने का इरादा रखती है।

*** *** ***

यदि ऐसा है तो मेरे माननीय मित्र को इस विधेयक को कानून बनाने में क्या आपत्ति है।** यदि सरकार यह सिद्धांत स्वीकार करती है और सरकार इसे कानून बनाना चाहती है तो जब तक ऐसा दंडनीय प्रावधान नहीं किया जाएगा कि यदि कोई व्यक्ति प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से ऐसे वध का उत्तरदायी होगा तो उसे दंड दिया जाएगा। यदि यह अधिकार स्वीकार किया जाता है और उसका उल्लंघन होने पर दंड का प्रावधान करने पर सहमति है तो मेरे विचार से सरकार की ओर से इस विधेयक को पारित करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए और इस विधेयक को तत्काल कानून बनाना चाहिए।

*** *** ***

मैं सरकार की आशंकाओं को व्यक्त करने के लिए माननीय मित्र का आभारी हूं@ तथापि मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि इस विधेयक को तत्काल पारित क्यों नहीं किया जाना चाहिए। विधेयक के प्रावधान, जिनके संबंध में माननीय मंत्री ने संक्षिप्त रूपरेखा बताई थी, बहुत आकर्षक है और मैं प्रस्तावित विधेयक के कुछ प्रावधानों का स्वागत करता हूं। इसको अगले सत्र में पारित किया जा सकता है। जहां तक विधेयक में शामिल किए गए इस सीमित प्रश्न का संबंध है। इस विधेयक का उस अधिनियम से कोई विरोध नहीं है अतः मैं यह आपत्ति समझने में असमर्थ हूं। वस्तुतः यह केन्द्रीय सरकार का, जो केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों वर्तमान मांग "ख" राज्यों के लिए जिम्मेदार है, कर्त्तव्य है कि वह इस प्रकार के विधेयक को पारित कर कानून बनाये। सरकार अभी तक यह करने में असमर्थ रही है। मैं अजमेर की जनता तथा भाग "ग" राज्यों की जनता की ओर से अपने माननीय मित्र पं० ठाकुरदास भार्गव का आभारी हूं जिन्होंने बड़ी योग्यता से इस

---

*श्री तिरूमल राव के इस कथन कि प्रश्न क्या है के उत्तर में।

**श्री तिरूमल राव की इस कथन कि मैं सभा को यह आश्वासन देना चाहता हूं कि सरकार का आशय इस विधेयक में उपयोगी और उत्पादक पशुओं के वध पर रोक लगाने का प्रावधान करना है। ऐसे पशुओं का वध रोकना इसका मुख्य विषय है" के उत्तर में।

@श्रीमती दुर्गाबाई के इस कथन कि "सरकार यह सब प्रावधान करने को इच्छुक है।" के उत्तर में।

विधेयक का संचालन किया है। वस्तुतः जनता के कल्याण के लिए यह अनिवार्य है कि हमारे पशुधन का यथासंभव परिरक्षण किया जाए।

एक वक्ता ने यह कहा था कि हमारे देश में पशुओं की संख्या इतनी अधिक है कि हम उनकी देखभाल करने में असमर्थ हैं इसलिए आर्थिक कारणों से इन पशुओं का परिरक्षण करना लाभकारी नहीं होगा। मैं सभा में इस प्रकार के किसी भी विचार का खंडन करता हूं। हम में से प्रत्येक का यह पुनीत कर्त्तव्य है कि हम ऐसे उपयोगी पशुओं का जो हमें दूध देते हैं परिरक्षण करें क्योंकि मां के बाद उनका ही स्थान आता है। मुझे इस बात पर आश्चर्य हुआ जब मंत्री महोदय ने यह कहा कि हरिद्वार आदि जैसे तीर्थ स्थानों में आवारा पशुओं की संख्या बहुत अधिक है जिनकी देखभाल नहीं होती। मैं समझता हूं कि यह विधेयक समस्त भारत पर लागू नहीं होता। मैं चाहता हूं कि इस विधेयक के उपबंध सारे भारत में लागू हों। वर्तमान रूप में यह विधेयक सीमित क्षेत्र अर्थात भाग "ग" राज्यों में ही लागू हो। उपमंत्री महोदय ने भाग "ग" राज्यों के किसी स्थान के बारे में इस प्रकार का उदाहरण नहीं दिया है। अजमेर के संबंध में मेरी बहुत अच्छी जानकारी है और मैं निश्चित रूप से कह सकता हूं कि जहां तक पशुधन की सुरक्षा का संबंध है।.....

*** *** ***

निश्चित रूप से वहां हैं।* यह पुष्कर में है, अजमेर में है, नसीराबाद और ब्यावर में भी है और मैं यह बात गर्व से कह सकता हूं कि ब्यावर की गौशाला भारत की सर्वोत्तम गौशालाओं में एक है और इस गौशाला के संबंध में भारत सरकार का भी यही मत है।

अतः मैं अपने क्षेत्र की ओर से इस विधेयक का समर्थन करता हूं और मैं इसे अत्यंत आवश्यक भी समझता हूं। अतः सरकार को इस विधेयक को पारित करने में कोई रुकावट नहीं डालनी चाहिए। मेरा निवेदन है कि यद्यपि एक बहुत लाभकारी विधेयक, जिसके संबंध में विरोधी पक्ष के माननीय सदस्यों की टिप्पणियों से अधिक जानकारी नहीं मिली सभा में लाया जाने वाला है। प्रस्तावित विधेयक के सुझावने प्रस्तावों के कारण इस विधेयक को पारित करने में कोई बाधा नहीं आनी चाहिए। यदि इस विधेयक को कानूनी रूप दिया जाए तो आज प्रस्तावित विधेयक के प्रावधान लागू होने के बीच बूचड़खानों में वध के लिए ले जाए जाने वाले पशुओं को बचाया जा सकेगा। और वास्तव में हर एक उपयोगी पशु का जीवन बचाना महत्वपूर्ण है।

मैं सभा का अधिक समय नहीं लेना चाहता हूं। मेरा अनुरोध है कि विधेयक को

---

*श्री तिरूमल राव के इस कथन में "क्या वहां पिंजरापोल हैं?" के उत्तर में।

पारित करने में कोई बाधा न डाली जाये इसलिए मैं अपने मित्र खाद्य उपमंत्री महोदय से निवेदन करूंगा कि वे विधेयक के उपबंधों का विरोध न करके विशेष तौर पर इसलिए कि प्रस्तावित विधेयक जिसे वे सभा में लाना चाहते हैं के उपबंध इसके पूरक हैं, वस्तुतः उनके विधेयक के उपबंधों के लागू होने के पूर्व पशुओं के जीवन की रक्षा करनी आवश्यक है और इस विधेयक के उपबंधों द्वारा यही किया जाना है। अतः मैं इस विधेयक का पुरजोर समर्थन करता हूं तथा अनुरोध करता हूं कि इसे तत्काल कानून बनाया जाये।

*** *** ***

हम गौसंवर्धन विधेयक के बारे में काफी समय से सुनते आ रहे हैं और अब यह हमारे समक्ष है किन्तु उसे प्रस्तुत करने के साथ ही माननीय मंत्री ने सभा से यह अनुरोध किया है कि इस पर चर्चा बहुत संक्षेप में हो जिससे कि यह विधेयक इसी सत्र में पारित हो सके।* उन्होंने सभा को यह भी बताया है कि उन्होंने इसके उपबंधों पर बारीकी से विचार किया है और चूंकि वे अविवादास्पद हैं उन पर विस्तार से चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है।

सभा को स्मरण होगा कि इसी विषय पर सभा में पिछले कुछ समय में कई बार चर्चा हो चुकी है। मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव ने इसी विषय पर एक गैर-सरकारी विधेयक प्रस्तुत किया था, उस पर चर्चा के दौरान यह आश्वासन दिया गया था कि चूंकि सरकार इस विषय पर एक व्यापक विधेयक लाने पर विचार कर रही है अतः गैर-सरकारी विधेयक को पारित करने के लिए आग्रह नहीं करना चाहिए। मैंने विधेयक के उपबंधों का अध्ययन किया है, पर मैंने पाया है कि महत्वपूर्ण बात जो पंडित ठाकुरदास भार्गव के विधेयक में थी इस विधेयक में शामिल नहीं की गई है। इस विधेयक के मुख्य उद्देश्यों में से एक भाग "ग" राज्यों में केन्द्रीय तथा राज्य गौ-संवर्धन परिषदों की स्थापना करना प्रतीत होता है। खंड 10 के अधीन गौसंवर्द्धन कोष की स्थापना करना इसका दूसरा उद्देश्य है। विधेयक का तीसरा उद्देश्य यह है कि विधेयक के लागू होने के दिन से किसी भी भाग "ग" राज्य में स्थापित प्रत्येक गौशाला का इस विधेयक के उपबंधों के अधीन पंजीकरण किया जाना चाहिए। यह भी प्रावधान है कि नई स्थापित गौशाला अथवा पिंजरापोलों के लिए भी ऐसा पंजीकरण करना अनिवार्य होगा। संक्षेप में विधेयक के यही उद्देश्य प्रतीत होते हैं।

पंडित ठाकुरदास भार्गव द्वारा प्रस्तावित गैर-सरकारी विधेयक के क्या उद्देश्य थे? जहां

---

*गौसंवर्धन विधेयक, 4 जून, 1951

तक मुझे याद है वह दो खंडों का बहुत छोटा विधेयक था जिसका उद्देश्य खंड "ग" राज्यों में उत्पादक और उपयोगी पशुओं के वध पर पूर्णतः रोक लगाना था। उस समय माननीय मंत्री तथा उपमंत्री ने सभा को यह आश्वासन दिया था कि जो विधेयक वह तैयार कर रहे हैं जो इस समय सभा के सम्मुख है उसमें पंडित ठाकुरदास भार्गव के विधेयक के महत्वपूर्ण उपबंध शामिल किए जाएंगे। परन्तु मुझे यह कहते हुए बहुत दुःख है कि इस विधेयक में ऐसा कोई उपबंध नहीं है जिससे भाग "ग" राज्यों में उपयोगी पशुओं के वध पर पूर्णतः रोक लगे और इसलिए इस विधेयक में इस महत्वपूर्ण उद्देश्य को शामिल न किए जाने पर मैं सभा को यह बताना चाहता हूं कि सरकार ने गैर-सरकारी विधेयक पर विचार के समय जब यह आश्वासन दिया था कि विधेयक को पारित करने का आग्रह न किया जाये, सभा को सरकार के आश्वासन द्वारा गुमराह किया गया। मैंने तब भी कहा था और आज भी वह बात दुहराता हूं कि सरकार का वह आश्वासन सभा के मूल सिद्धांतों पर अर्थात् खंड "ग" राज्यों में उपयोगी पशुओं के वध पर रोक लगाना—कुठाराघात करने के लिए किया गया था। क्या इस विधेयक में इस संदर्भ में कोई उपबंध है। इस संबंध में मेरे माननीय मित्र खंड-4 का उल्लेख कर सकते हैं जिसमें यह कहा गया है कि केन्द्रीय गौसंवर्धन परिषदों को यह अधिकार होगा कि वे उपयोगी और उत्पादक पशुओं के वध पर रोक लगाने के संबंध में विनियम बनायें। परन्तु परिषद द्वारा ऐसा नियम बनाना अथवा नहीं बनाना उसकी इच्छा पर निर्भर है। वस्तुतः इस प्रकार यह मुख्य प्रश्न, कि सरकार भाग "ग" राज्यों में पशुवध पर रोक लगाना चाहती है टाल दिया गया है। हमें बताया गया था कि यद्यपि यह विधेयक मात्र "ग" राज्यों में लागू करने के लिए बनाया गया है, तथापि यह सभी राज्यों के लिए एक अनुकरणीय आदर्श होगा

महोदय मेरा विचार है कि इस विधेयक के उपबंध निराशाजनक हैं उन्हें अपने वर्तमान रूप में प्रवर समिति द्वारा स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। प्रवर समिति को इस विशेष बात पर ध्यान देना चाहिए कि भाग "ग" राज्यों के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों में उपयोगी पशुओं के वध पर पूर्णतः रोक लगाई जाए और इन उपबंधों का उल्लंघन करने पर पर्याप्त दंड की व्यवस्था की जाए। गैर-सरकारी विधेयक इसी एक उद्देश्य से लाया गया था और इस उद्देश्य का विधेयक में जिक्र नहीं है। मुझे संदेह है कि प्रवर समिति के लिए इस सीमा तक जाना संभव हो सकेगा, क्योंकि यह तर्क दिया जा सकता है कि पशु वध पर रोक लगाना इस विधेयक के क्षेत्र और परिधि के बाहर है जिसका मुख्य उद्देश्य गोसंवर्धन परिषदों की स्थापना करना है। यदि ऐसा है तो इस विधेयक पर आगे चर्चा करने का कोई लाभ नहीं है। भाग "ग" तथा अन्य राज्यों में भी पहले से ही पिंजरापोल और गौशालायें मौजूद हैं जो कि अंग्रेजों के समय से ही बिना सरकारी सहायता के चल रही हैं। काफी समय से ही निजी धर्मार्थ संस्थायें पशुओं के परिरक्षण और संरक्षण के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करती रही हैं। अजमेर में ही कई गौशालायें हैं। यदि सरकार

का आशय इन गौशालाओं को संरक्षण अथवा सहायता देना है तो वह ऐसा, इस विधेयक की अपेक्षा अन्य तरीकों से अच्छी प्रकार कर सकती है। कोई भी व्यक्ति यह नहीं कह सकता होगा कि पशुधन का परिरक्षण और संरक्षण तथा उनकी नस्ल सुधारने का सरकार का उद्देश्य अच्छा है तथापि नस्ल सुधारने के पूर्व पशुओं के जीवन की रक्षा की जानी चाहिए। इसलिए यदि पशु वध को रोकने की अनिवार्य शर्त इस विधेयक का उद्देश्य नहीं है और सरकार ऐसा करने के लिए तैयार नहीं है तो यह दावा करना कि इस विधेयक के प्रावधानों द्वारा पशुधन की सच्चे अर्थों में रक्षा अथवा परिरक्षण हो सकेगा एकदम गलत है।

अतः मेरा निवेदन है कि सरकार को यह स्पष्ट करना चाहिए कि भाग "ग" राज्यों में पशुवध पर पूर्णतः रोक लगाना प्रवर समिति के अधिकार क्षेत्र में होगा। यह पहली शर्त है। इस शर्त को पूरा करने के पचात् ही सरकार विधेयक में प्रस्तावित गौसंवर्धन परिषदों की स्थापना करने के बारे में और क्या इन परिषदों का कार्य क्षेत्र और सीमा खंड-4 में विहित प्रावधानों के अधीन ही रहेगी पर विचार करना चाहिए।

महोदय, यह कहा गया है कि यह परिषद ऐसे विनियम बना सकती है जिसके अधीन वह उपयोग और उत्पादक पशुओं के वध पर रोक लगा सकती है अथवा प्रतिबन्धित कर सकती है और ऐसे किसी विनियम का उल्लंघन करने पर सौ रुपए जुर्माना अथवा एक महीने की साधारण कैद की सजा हो सकती है। महोदय मेरा निवेदन है कि देश की स्थिति और इस तथ्य को देखते हुए कि बहुत बड़ी संख्या में उपयोगी पशुओं का वध किया जा रहा है यह दंड बहुत कम है। यदि वास्तव में सरकार का उद्देश्य उपयोगी पशुओं के वध पर प्रतिबंध और रोक लगाना है तो कानून का उल्लंघन करने वालों को समुचित और पर्याप्त सजा मिलनी चाहिए।

महोदय, इस विधेयक को परिचालित करने का प्रस्ताव वस्तुतः विलम्बकारी प्रकार का है क्योंकि सभा में तथा देश में भी इस बात पर कोई मतभेद नहीं है कि पशुधन का संरक्षण होना चाहिए तथा उनकी नस्ल का सुधार किया जाना चाहिए। इस विषय पर देश में पूर्णतः सहमति है। इसलिए मेरा निवेदन है कि विधेयक को परिचालित करने का प्रस्ताव स्वीकार न किया जाए। अथवा इसका विकल्प यह है कि माननीय मंत्री स्पष्ट रूप से यह कहें कि प्रवर समिति पशु वध पर रोक लगाने के प्रश्न पर विचार कर सकती है। यदि मैंने उनके भाषण को ठीक प्रकार समझा है तो पशु वध पर पूर्णतः रोक लगाने का प्रश्न प्रवर समिति के क्षेत्राधिकार से बाहर है। वह केवल इस प्रश्न पर विचार कर सकती है कि राज्य संवर्धन परिषद अथवा केन्द्रीय संवर्धन परिषदों की स्थापना। किस प्रकार की जाएगी और उनके कार्य अथवा दायित्व क्या होंगे, इत्यादि।

विधेयक का एक अन्य उद्देश्य धारा 10 के अधीन "संवर्धन" कोष की स्थापना करना है। धारा 13 में यह प्रावधान किया गया है कि केन्द्रीय संवर्धन परिषद अथवा उसकी शाखाएं मेलों अथवा बाजारों में पशुओं की बिक्री पर उपकर लगा सकेंगी। तथापि यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि उपकर की राशि क्या होगी तथा इस कोष का उपयोग किस प्रयोजन के लिए किया जाएगा। विधेयक के प्रावधानों से यह स्पष्ट नहीं है कि सरकार इस कोष में कितना अंशदान देगी। मेरा निवेदन है कि प्रवर समिति सरकार के लिए यह अनिवार्य करे कि वह उपकर द्वारा प्राप्त होने वाली आय अथवा निजी संस्थाओं से प्राप्त दान की राशि का पचास प्रतिशत का अंशदान दे। जब तक ऐसा नहीं किया जाएगा तब तक संस्थाओं को आर्थिक तंगी रहेगी और केन्द्रीय तथा राज्य परिषदें पर्याप्त धनराशि के अभाव में संतोषजनक कार्य करने में असमर्थ रहेंगी। अतः प्रवर समिति को सरकार के लिए यह अनिवार्य करना चाहिए कि वह कुछ प्रतिशत वार्षिक अनुदान दे और यह प्रतिशत, केन्द्रीय अथवा राज्य परिषदों द्वारा उपकर के माध्यम से एकत्र की गई राशि अथवा गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा प्राप्त दान की राशि 50% से कम न हो।

महोदय, विधेयक में राज्य परिषदों के कृत्यों का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए यथा राज्य परिषदों के कर्मचारियों को किस प्रकार बेहतर सुविधाएं प्रदान की जाएंगी जिससे वे देश के विभिन्न भागों में स्थित इन संस्थाओं की सेवा कारगर तरीके से कर सकें। यह संभव है, जैसी कि प्रथा है कि इन संस्थाओं द्वारा एकत्र किए गए कोष का बड़ा भाग कर्मचारियों के वेतन इत्यादि में व्यय हो जाता है और बहुत कम राशि उन संस्थाओं के लिए उपयोग की जाती है जिन्हें लाभ पहुंचाया जाना चाहिए।

महोदय, मैं यह बात प्रवर समिति के विवेक पर छोड़ता हूं कि वह इस बात को अनिवार्य करे या न करे कि प्रत्येक संस्था, जो इस समय कार्य कर रही है अथवा जो भविष्य में स्थापित की जाएगी के लिए पंजीकरण करवाना अनिवार्य करें। मेरा निवेदन है कि सरकारी संस्थाओं और उनकी कार्यप्रणाली के बारे में हमारा अनुभव बहुत अच्छा नहीं रहा है और यदि पंजीकरण करना अनिवार्य कर दिया जाएगा तो इससे धर्मार्थ संस्थाओं के कार्यकलाप में, जो हमारे देश में बहुत समय से कार्य कर रही हैं, अनुचित हस्तक्षेप करने जैसा होगा। यदि हम इस देश की जनता की परोपकारी भावना पर भरोसा करेंगे, तो ऐसी कई संस्थाएं बन जाएंगी तो क्या सरकार इसको सहायता देगी या नहीं। अतः मेरा निवेदन है कि अनिवार्य पंजीकरण समाप्त किया जाना चाहिए। आप यह शर्त रख सकते हैं कि केवल उन संस्थाओं को जो इस अधिनियम के अधीन पंजीकृत हैं उन्हें ही सरकारी-वित्तीय अथवा अन्य प्रकार की सहायता पाने का अधिकार हो। यह बात तो समझ में आती है किन्तु प्रत्येक संस्था के लिए पंजीकरण अनिवार्य बनाना उचित नहीं होगा।

मैं, एक अन्य विषय की ओर सभा का ध्यान दिलाना चाहता हूं जिस पर बिल्कुल विचार नहीं किया गया है। पशुओं की नस्ल का परिरक्षण, संरक्षण, और सुधार मुख्यतः पशुओं को खिलाए जाने वाली घास की किस्म तथा अन्य चारे पर निर्भर है। क्या इस विधेयक में ऐसे प्रावधान हैं जिनके अन्तर्गत राज्य परिषदों तथा केन्द्रीय परिषद को यह देखने का अधिकार है कि प्रत्येक ग्राम अथवा प्रत्येक नगर की भूमि का समुचित भाग पशुओं के चरने के लिए रक्षित किया जाए। हम देख रहे हैं कि चरागाहों की भूमि प्रति वर्ष कम होती जा रही है। इसलिए यदि यह परिषद् कारगर तरीके से काम करना चाहती है और अपने लक्ष्य को भी प्राप्त करना चाहती है तो सर्वप्रथम यह देखना अनिवार्य होगा कि राज्य परिषदों और केन्द्रीय परिषदों को, पशुओं के चरागाह के लिए सुरक्षित भूमि को स्थानीय सरकारों से राप्त करने के लिए पर्याप्त अधिकार दिए जाएं। जब तक ऐसा नहीं किया जाएगा तब तक पशुओं के संरक्षण और परिरक्षण की बात करना निरर्थक होगा।

मैं यह कुछ सुझाव रखना चाहता हूं तथापि मैं एक बार फिर यह बात दुहराना चाहता हूं कि प्रवर समिति का सबसे पहला उद्देश्य यह होना चाहिए कि वह ऐसे प्रावधान बनाए जिनसे भाग "ग" राज्यों में पशुवध पर पूर्णतः रोक लग सके तथा इन प्रावधानों का उल्लंघन करने वालों को कठोर दंड दिया जाए। जब तक ऐसा नहीं किया जाएगा तब तक पशुधन के परिरक्षण, संरक्षण और सुधार की बात करना निरर्थक है। मैं इस विधेयक को पारित करने में कोई अड़चन नहीं डालना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि इस विधेयक को तत्काल अधिनियम बनाया जाए तथा उसमें मेरे सुझाव तथा शर्तें भी शामिल की जाएं। इन शब्दों के साथ मैं इस विधेयक के प्रावधानों का समर्थन करता हूं।

4

कर अपवंचकों और काला बाजारियों को दंड देने संबंधी विधेयक के संबंध में*

मेरे माननीय मित्र प्रो० शाह द्वारा प्रस्तावित इस विधेयक का उद्देश्य कर की चोरी करने और कालाबाजारी करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को फांसी की सजा देने का है। मैं माननीय मित्र से विनम्रतापूर्वक यह पूछना चाहता हूं कि वे उन लोगों को क्या दंड देना चाहते हैं जो उन स्थितियों को पैदा करने के लिए जिम्मेदार हैं जिनके अंतर्गत काला बाजार की यह बुराई पैदा हुई।

जहां तक इस विधेयक का संबंध है इसका एकमात्र उद्देश्य सजा को बढ़ा कर आजीवन कारावास अथवा फांसी देना है तथा यह विधि क्षेत्र में कोई नया सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं करता है। जैसाकि मेरे माननीय मित्र उपाध्यक्ष महोदय ने कहा है कि ऐसे कानून हैं जिनके अंतर्गत ऐसे अपराध करने पर कारावास की सजा का प्रावधान किया गया है। परन्तु ऐसे कानूनों को लागू करने का इतिहास क्या रहा है? आप पिछले तीन वर्षों का इतिहास देखें तो आपको ज्ञात होगा कि शायद ही कभी काला बाजार करने वाले किसी व्यक्ति को सजा दी गयी है, यदि कानून में कोई कमी इस कमजोरी के लिए जिम्मेदार हो तो निःसंदेह हमें कानून को अधिक कठोर बनाना चाहिए लेकिन सच्चाई यह है कि प्रशासन इन कानूनों को लागू करने और कालाबाजारियों को सजा देने में पूरी तरह असफल रहा है। इसलिए यदि सभा इस प्रश्न के संबंध में गंभीरता से विचार करना चाहती है तो हमें आज, कल तथा आगे आने वाले समय में भी इस प्रश्न पर विचार करना है कि हम उन स्थितियों में कैसे सुधार ला सकते हैं जिनमें यह बुराई पैदा होती है।

मैंने चर्चा के आरम्भ में भी यह संगत प्रश्न पूछा कि प्रस्तावक महोदय उन व्यक्तियों को क्या दंड देना चाहते हैं जो ऐसी स्थितियां पैदा करने के लिए जिम्मेदार हैं। यह धरोहर हमें अंग्रेज शासकों से प्राप्त हुई है। 1943 से पूर्व भारत में किसी प्रकार के नियंत्रण संबंधी कानून नहीं थे। जून, 1943 में पहली बार तत्कालीन सरकार ने कपड़ा नियंत्रण

*लोक सभा वाद-विवाद 25 मार्च, 1950, पृष्ठ 2128—2130

लागू किया था और सितम्बर 1943 से खाद्यान्नों के समस्त निर्यात और आयात को सरकार ने अपने हाथ में ले लिया था इन नियंत्रण-कानूनों के लागू होने के पश्चात् ही कालाबाजारी की यह बुराई शुरू हुई। इसके पूर्व हममें से बहुत कम लोगों ने कालाबाजारी का नाम सुना था। इसलिए वास्तविक अपराधी वे नहीं हैं जो अपराध करते हैं बल्कि वे हैं जो इस प्रकार की स्थितियां पैदा करते हैं, उन्हें बढ़ावा देते हैं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जब तक वे स्थितियां समाप्त नहीं की जाती तब तक इस बुराई का निराकरण नहीं किया जा सकता है। आप भले ही कितने कानून बनाए या डिग्री लागू करें, उनसे यह बुराई समाप्त नहीं की जा सकती है। कालाबाजार की इस बुराई से सरकार को राजस्व की अत्यधिक हानि हुई है। इतना ही नहीं इससे एक अधिक दुखद बात पैदा हुई है— जो इससे भी अधिक कष्टप्रद है— वह है राष्ट्र में नैतिकता का गिरना और उसका पतन होना। अतः हमें इस बात की पुरजोर कोशिश करनी चाहिए कि यह बुराई पूर्णतः समाप्त हो। मेरा विचार है कि इस सभा का प्रत्येक सदस्य प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से इस बुराई को बनाए रखने के लिए जिम्मेदार है क्योंकि हम प्रतिदिन कानून बना रहे हैं और नियंत्रण लागू कर रहे हैं लेकिन इस बात को सुनिश्चित नहीं कर रहे हैं कि उन्हें समुचित तरीके से लागू किया जाए। अतः मेरे विचार से इसका उपचार कानून बनाकर अथवा अधिक कठोर कानून बनाकर नहीं किया जा सकता है अपितु नियंत्रण संबंधी उपायों को सार्वजनिक जीवन से समाप्त करके किया जा सकता है। इस प्रश्न के सभी पहलुओं पर विस्तार से विचार करने के पश्चात् मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि देश के व्यापक हित में प्रत्येक प्रकार का नियन्त्रण एकदम समाप्त कर दिया जाना चाहिए। वस्तुतः वे ही लोग कालाबाजार की बुराई और भ्रष्टाचार के जिम्मेदार हैं।

मेरे माननीय मित्र श्री त्यागी ने एक बार कहा था कि बजट में वित्त मंत्री ने शहरी लोगों के साथ पक्षपात किया है। मेरी शिकायत इससे भी अधिक है वह यह है कि केवल बजट ही नहीं अपितु नियंत्रण के तरीकों तथा उन्हें लागू करने में भी शहरी लोगों के साथ पक्षपात किया गया है। मैं आपसे पूछता हूं कि आज जो खाद्यान्नों पर नियंत्रण है वह किसके लिए है? यदि आप खाद्यान्नों संबंधी नियंत्रण के क्रियान्वयन को देखें तो आप इस परिणाम पर पहुंचेंगे कि वह नियंत्रण शहरों में रहने वाले लोगों के लिए बनाए गए हैं जो कुल संख्या देश की कुल जनसंख्या का मात्र 10 से 15 प्रतिशत हैं। यदि हम खाद्य मंत्रालय द्वारा परिचालित पुस्तिका का अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होगा कि लगभग 1000 नगरों में राशन की व्यवस्था लागू है और इसके अन्तर्गत 1290 लाख व्यक्ति आते हैं। केवल 1000 नगरों को लाभान्वित करने के लिए जनता का अत्यधिक धन व्यय करके नियंत्रण की ऐसी व्यापक व्यवस्था की गयी है लेकिन इससे जनता में नैतिक तथा चारित्रिक पतन हुआ है। सत्ता पक्ष की ओर से इसके समर्थन में यह तर्क दिया गया है

कि देश में खाद्यान्नों की कमी है इसलिए नियंत्रण जारी रहना चाहिए। तथापि प्रश्न यह है कि क्या किसी ने इस प्रश्न पर गहराई से विचार किया है? क्या सरकार देश में उत्पन्न होने वाले खाद्यान्नों की मात्रा के संबंध में विश्वसनीय आंकड़े प्राप्त कर सकी है? सरकार ने देश में खाद्यान्नों के उत्पादन के संबंध में सही अनुमान लगा सकने में असफल रही है। यदि हम इसका भी अनुमान नहीं लगा सके हैं तो नियंत्रण उपाय किस प्रकार सफल हो सकते हैं। ऐसे तरीके कैसे सफल हो सकते हैं जब तक हमें खाद्यान्नों, तथा उत्पादक से लेकर उपभोक्ता के हाथों में जाने तक उसकी प्रगति के संबंध में जानकारी न हो? वस्तुतः अंग्रेज शासकों द्वारा यह नियंत्रण ब्रिटेन में लागू नियंत्रणों की तरह ही लागू किए गए थे। हमने उनसे प्राप्त धरोहरों की आंख मूंद कर नकल की है, भले ही ये नियंत्रण हमारे देश के लिए उपयुक्त नहीं हैं। मेरा विनम्र निवेदन है कि खाद्यान्नों पर लागू नियंत्रण एकदम असफल रहा है न केवल इससे जनता के धन का भारी अपव्यय हुआ है अपितु इससे जनता की नैतिकता पर भी कुप्रभाव पड़ा है। राशनिंग की व्यवस्था से केवल ग्रामीण जनता को ही लाभ पहुंचा है। मैं अपने प्रांत में ये नियंत्रण लागू करने से उत्पन्न विसंगत परिस्थितियों के बारे में बताना चाहता हूं।

**** ****

मैं आदरपूर्वक आपके आदेश का पालन करता हूं। मैं कुछ ही मिनटों में अपना भाषण समाप्त कर दूंगा।* मैं अभी यह बता रहा था कि नियंत्रण लागू करने के कारण मेरे प्रान्त अजमेर मारवाड़ में क्या विसंगति पैदा हो गयी है।

पिछले दिनों माननीय कृषि एवं खाद्य मंत्री ने सभा में यह स्वीकार किया था कि ग्रामीण क्षेत्र में भी बहुत खराब किस्म का जौ और चना एक रु० में दो सेर के हिसाब से बेचा जा रहा है। जब कि शहरों में राशन की दुकानों पर बहुत अच्छी किस्म का आयातित गेहूं एक रुपये में 3 सेर से 4 छटांक की दर से उपलब्ध है। इस उदाहरण से यह स्पष्ट है कि ये नियंत्रण केवल शहर के लोगों के ही लाभ के लिए हैं जबकि उनकी जनसंख्या का लगभग 60% ऊंची कीमत पर खाद्यान्न खरीदने को तैयार हैं। अतः मेरा सादर अनुरोध है कि जबतक उन कारणों को समाप्त नहीं किया जाएगा जिनसे कालाबाजारी का जन्म होता है, कालाबाजार कभी समाप्त नहीं होगा केवल खाद्यान्नों के

---

*अध्यक्ष महोदय द्वारा "शान्ति शान्ति" करने पर टिप्पणी करते हुए। मैं माननीय सदस्य को यह बताना चाहता हूं कि खाद्य नियंत्रण लागू करने के संबंध में विस्तार से चर्चा करना युक्तिसंगत नहीं है। उन्होंने मुख्य बात यह कही है कि इस बुराई का मूल नियंत्रण है और मेरे विचार से इस पर वह अपने विचार रख चुके हैं। अतः उन्हें विस्तार में नहीं जाना चाहिए अन्यथा यह चर्चा नियंत्रण लागू होने चाहिए अथवा नहीं में बदल जाएगी।

कन्ट्रोल के कारण नहीं अपितु कपड़ा, सीमेंट तथा अन्य पदार्थों के क्षेत्र में भी जितने शीघ्र कंट्रोल संबंधी नियम इत्यादि समाप्त कर दिए जाएं उतना ही वे देश के हित में होगा। जनता के चरित्र का स्तर ऊंचा करने, सामान्य स्थितियां पुनः पैदा करने तथा कालाबाजार के फलस्वरूप होने वाली बुराइयों को दूर करने के लिए ऐसा करना आवश्यक है। कानून अभी तक चोर बाजारी करने वालों को कानून के शिकंजे में लाने में असमर्थ रहा है। इन कन्ट्रोलों के प्रशासन का इतिहास इस सरकार की उपलब्धियों का एक निराशाजनक अध्याय है। अपने प्रान्त के बारे में मैं जानता हूं कि कौन लोग इन कानूनों की चपेट में आए। ये वे लोग नहीं हैं जिन्होंने लाखों रुपये कमाए हैं—क्योंकि उन लोगों के पास अपने को कानून के शिकंजे से मुक्त रखने के लिए लाखों रुपये हैं, यह दुख की बात है कि हमारे सरकारी अधिकारी निर्दोष और अनपढ़ गरामवासियों को किसी टेक्नीकल दृष्टि से भी कानून का उल्लंघन करने पर पकड़ने में बड़े सक्रिय रहते हैं जबकि वास्तविक अपराधी साफ बच निकलते हैं। इन गरीब ग्रामीणों को न्यायालय में घसीटा जाता है जहां इन पर महीनों और वर्षों तक मुकदमा चलता रहता है। इस बीच वे खाद्यान्न तथा दूसरी वस्तुएं जिसे पुलिस ने इन ग्रामीणों से अपने कब्जे में किया था सड़ती रहती है और व्यक्ति को सजा होने तक सारा का सारा खाद्यान्न खराब हो जाता है। कन्ट्रोल संबंधी नियमों को लागू करने का यह तरीका अत्यंत शोचनीय है।

पिछले चार-पांच वर्षों में प्रशासनिक व्यवस्था में पर्याप्त गिरावट आई है। इस बात को माननीय वित्त मंत्री ने भी सभा में स्वीकार किया कि प्रशासनिक तंत्र एकदम निष्प्रभावी सिद्ध हुआ है तथा वह आज की बहुत सी बुराइयों के लिए जिम्मेदार है। यदि सरकारी पक्ष की यह आत्म स्वीकृति है और वे इस व्यवस्था में सुधार करने में असमर्थ हैं तो एकमात्र रास्ता यही रह जाता है कि हम इन सारे कन्ट्रोलों को समाप्त करें तथा सामान्य व्यावसायिक साधनों को पुनः लागू करें। इससे कालाबाजार स्वभावतः समाप्त हो जाएगा।

जहां तक कर अपवंचन के दूसरे अपराध का संबंध है, प्रस्तावक ने जिन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए यह विधेयक प्रस्तुत किया है मुझे उनसे पूर्ण सहानुभूति है। तथापि ऐसे कानून पहले से ही विद्यमान हैं। वास्तविक कठिनाई यह है कि वास्तविक अपराधी तो इसके शिकंजे से बाहर निकल जाते हैं और निर्दोषों को दंड भुगतना पड़ता है। इसका व्यवहारिक उपचार प्रशासनिक तंत्र में सुधार करना है न कि कानूनों को और कठोर बनाना।

भाग चार
श्रद्धांजलियां

श्रद्धांजलियां

स्वर्गीय पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव न केवल अजमेर के अपितु पूरे राजस्थान के एक महान नेता थे। स्वतंत्रता आंदोलन, संसद और सार्वजनिक जीवन में उनका योगदान अद्वितीय रहा। उनकी बुद्धि तीक्ष्ण और स्मृति असाधारण थी। इन योग्यताओं के कारण वे राजस्थान उच्च न्यायालय के बारे के सर्वोच्च नेता के पद पर पहुंचे। वे केवल राजनैतिक कार्यकर्ताओं के ही नहीं अपितु राजस्थान की युवा पीढ़ी के वकीलों के भी मार्गदर्शक रहे। आज उनके निधन के इतने समय पश्चात भी उन्हें राजस्थान के वकील समुदाय और सार्वजनिक जीवन में आदर के साथ याद किया जाता है। मेरा उनसे सम्पर्क न केवल कांग्रेसी होने के नाते अपितु वकील होने के नाते भी रहा। उनकी यथार्थवादी दृष्टि और सार्वजनिक जीवन में वकालत के पेशे की गरिमा बनाए रखने की उनकी कला से मैंने बहुत कुछ सीखा है।

नवल किशोर शर्मा
अध्यक्ष,
खादी तथा ग्रामोद्योग आयोग

*** *** ***

सर्वोच्च न्यायालय में मैं तथा मेरे सहयोगी, पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव की असाधारण स्मरण शक्ति के कायल थे। यद्यपि दुर्भाग्य से उनकी दृष्टि पूरी तरह समाप्त हो गयी थी तथा वे अन्य वकीलों की अपेक्षा अधिक बारीकी से अपने मुकदमों की पैरवी करते थे। उनका जीवन इस बात का ज्वलंत प्रमाण है कि एक व्यक्ति जीवन में आने वाली भयंकर कठिनाइयों पर भी किस प्रकार विजय प्राप्त कर सकता है। उन्होंने कई न्यायालयों और न्यायाधीशों को कानून की पेचीदा समस्याओं का हल ढूंढने में मदद की। मैं उनकी स्मृति के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

जस्टिस वाई०वी० चन्द्रचूड़
भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश

*** *** ***

पंडित मुकुट बिहारी लाल भार्गव संविधान सभा, अस्थायी संसद तत्पश्चात प्रथम लोक सभा में जिसका मैं 1958 तक सदस्य रहा जब मैं कर्नाटक का मुख्यमंत्री बना, मेरे सहयोगी भी रहे। मैं तथा संविधान सभा और संसद के मेरे सहयोगी उन्हें अत्यधिक सक्रिय, जानकार, परिश्रमी और प्रबुद्ध संसद सदस्य के रूप मे याद करते हैं। वे उन सदस्यों में से थे जो उस समय विचार तथा निर्णय के लिए आने वाले प्रत्येक महत्वपूर्ण विषय पर अधिकार के साथ बोल सकते थे। वे किसी भी समस्या पर बिना अध्ययन किए नहीं बोलते थे और सदैव तथ्य तथा आंकड़ों से अपनी बात की पुष्टि करते थे। वे उन थोड़े से सदस्यों में से थे जिनकी बात आदर और गम्भीरता के साथ सुनी जाती थी। वे कभी असावधान नहीं रहे।

वे सभा के आदरणीय और प्रबुद्ध सदस्यों में से एक थे। उन्होंने अपनी शिष्टता और नम्रता से सभी को प्रभावित किया था। मेरी यह भावना है कि संसद तथा विधान सभा के सदस्यों को उनके जीवन का अध्ययन करना चाहिए तथा ऐसी संस्थाओं में सदस्य के रूप में कार्य करने में उनके जीवन से मार्गदर्शन लेना चाहिए।

एस॰ निजलिंगप्पा
सदस्य, संविधान सभा

*** *** ***

श्री मुकुट बिहारी लाल भार्गव के बारे में लिखते समय मेरे मन में संविधान सभा की तथा कांग्रेस दल के उन महान नेताओं के साथ अपने संबंधों की तथा विभिन्न प्रांतों से चुनकर आए उन विशिष्ट सदस्यों, जो भारत के बुद्धिजीवी वर्ग के सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों में थे, के साथ अपने संबंधों की याद ताजा हो जाती है। इन महान नेताओं, जिन्होंने स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान देश के लिए अपने निस्वार्थ त्याग से आजादी का लक्ष्य प्राप्त किया, की गरिमा से व्यक्ति का मस्तक झुक जाता है। ऐसे नेताओं में श्री मुकुट बिहारी लाल भार्गव का बहुत ऊंचा स्थान है।

संविधान के निर्माण में उनका योगदान महत्वपूर्ण रहा है। जहां तक जनता की भावनाओं और परम्पराओं का संबंध है भारतीय संविधान को सर्वोत्तम माना जाता है। इस महान कार्य में श्री भार्गव का योगदान कम नहीं रहा। वे सर्वांगीण व्यक्तित्व के धनी थे। वे सभा की चर्चाओं में महत्वपूर्ण भाग लेते रहे। सभा का कार्यवाही वृतांत इसका साक्षी

है। वे सदैव तर्कसंगत बोलते थे तथा तथ्यों एवं आंकड़ों से अपनी बात की पुष्टि करते थे। उनकी सच्चाई, योग्यता तथा निस्वार्थ भावना ने मुझे बहुत प्रभावित किया था। उनकी असाधारण स्मृति सबको आश्चर्यचकित कर देती थी। वह अपने तर्कों की पुष्टि में कानून की किताबों के शब्दों और वाक्यों के उद्धरण देते थे। उनकी दृष्टिहीनता को देखते हुए यह अद्भुत बात थी। उनमें अपनी बात कहने का साहस था तथा वे अपनी बात संगत और कारगर तरीके से रख सकते थे। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि लोक सभा सचिवालय ऐसे महान देशभक्त और सांसद का जीवनवृत्त प्रकाशित कर रहा है।

मैं उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि देती हूं।

बेगम एज़ाज रसूल
सदस्या, संविधान सभा

*** *** ***

मुझे श्री मुकुट बिहारी लाल भार्गव के साथ संविधान सभा, संविधान सभा (विधायिका) अस्थायी संसद तथा पहली और दूसरी लोक सभा में काम करने का अवसर प्राप्त हुआ था। श्री भार्गव ने कांग्रेस दल की बैठकों, संविधान सभा और अस्थायी संसद के सत्रों में संविधान के अनुच्छेदों पर चर्चा करने में गहरी दिलचस्पी ली थी तथा कई संशोधन भी प्रस्तुत किए थे। बजट पर सामान्य चर्चा तथा शून्य काल (जीरो ऑवर) तथा विधेयकों पर चर्चा के दौरान भी उन्होंने कई महत्वपूर्ण विषयों पर सभा में चर्चा की। उन्होंने केन्द्रीय विधान सभा, संविधान सभा, अस्थायी संसद तथा लोक सभा में केन्द्र प्रशासित राज्य अजमेर का प्रतिनिधित्व किया था।

पंडित भार्गव काश्तकारों के हितों की रक्षा, उनके हकों की सुरक्षा तथा उनके द्वारा जमींदारों की भूमि पर उगायी जाने वाली फसलों में उनका भाग सुनिश्चित करने में बहुत दिलचस्पी लेते थे। सरकार को अजमेर काश्तकारी विधेयक को सभा में प्रस्तावित करने के लिए प्रेरित करने में उनकी प्रमुख भूमिका थी। इसके द्वारा काश्तकारों के पट्टों, फसल में उनके हिस्से तथा जमींदारों की भूमि में उनकी लगान का निर्धारण हुआ था। इस विधेयक पर संसद की प्रवर समिति में श्री मुकुट बिहारी लाल भार्गव के साथ काम करने का मुझे भी अवसर मिला था। श्री भार्गव ने वर्तमान अधिनियमों में अनेक संशोधन प्रस्तुत किए थे।

चौ० रणवीर सिंह
सदस्य, संविधान सभा तथा
कार्यकारी अध्यक्ष, अखिल भारतीय स्वतंत्रता सेनानी